परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

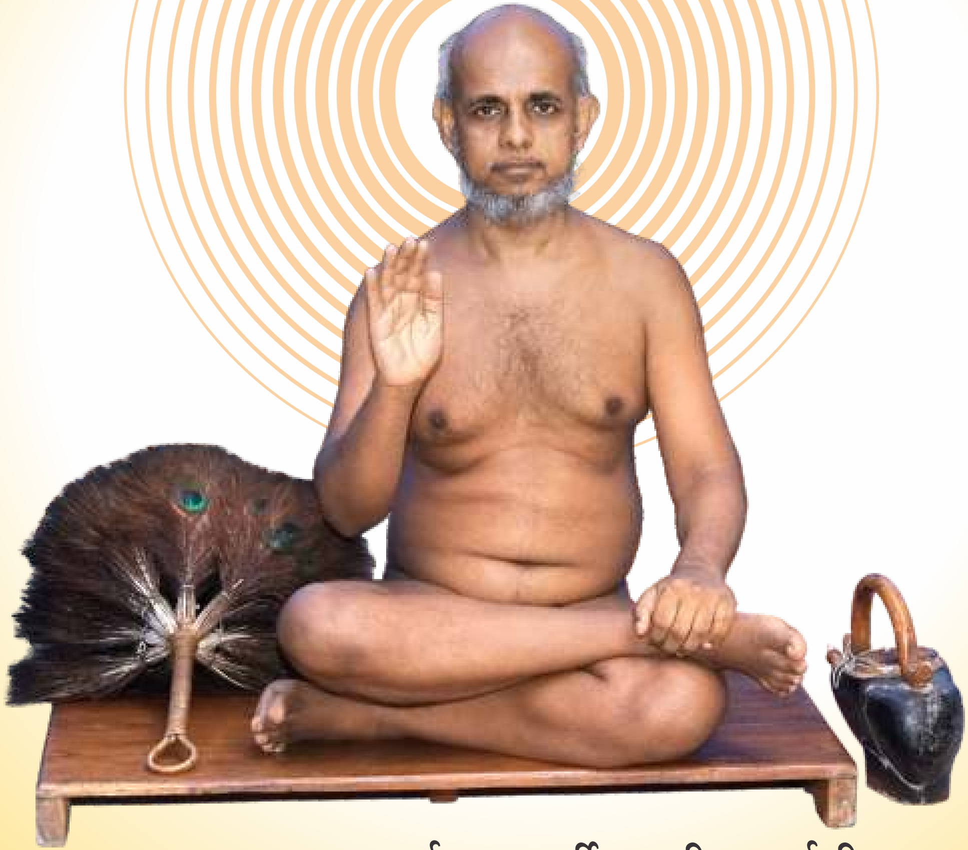

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

विचार एवं वितर्क का वैज्ञानिक विश्लेषण

लेखक

कामताप्रसाद जी जैन

प्रकाशक

श्री अखिल विश्व जैन मिशन

अलीगंज (उत्तरप्रदेश)

HD Wallpapers points

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

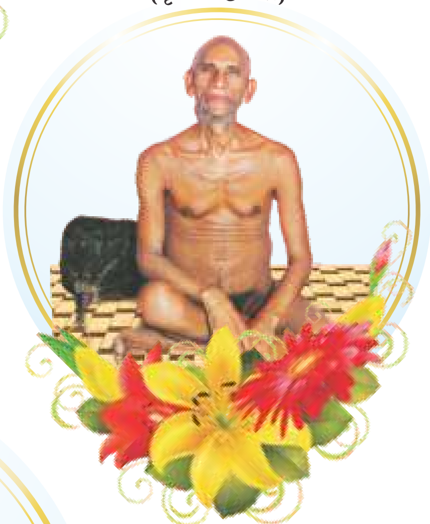

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

विचार और वितर्क का वैज्ञानिक विश्लेषण

लेखक —
कामताप्रसाद जैन, Ph D

१९५८

श्री अखिल विश्व जैन मिशन,
अलीगंज (एटा)
उ० प्र०

प्रथम संस्करण | २००

विचार और वितर्क का वैज्ञानिक विश्लेषण।

(१)

वस्तु स्वरूप और उसकी विवेचना शैली।

रवि प्रतिदिन प्रात काल शिवके पास आया करता था और दोनों वायुसेवन के लिये जाया करते थ। आज रवि न आया, यद्यपि सूय चढ आया था। मित्रको न पाकर शिव विकल था। ज्योंही घर की पौलीपर रविकी छाई पडी, शिवने चिल्ला कर कहा–'भाई! आज इतनी देर कहा लगाई? प्रतीक्षा में मेरी आखें ही पथरा गई।' रविन कौतूहल में कहा मुझे देर हुई तो क्या, पर रविकी किरणें तो तुम्हें सवेरे सवेरे मिलगई।'

'बड खुश हो, आज टहलने चलना है क्या?'

'अवश्य!' कहकर रवि और शिव सागर-तटकी ओर चल दिय। सघनवृक्षों के कोमल किसलयों में से छनकर आतीं हुइ रवि रश्मिया मानो उनसे आखमिचौनी खेल रहीं थीं। शिवने मौनभङ्ग करते हुये कहा–'आज कहीं अटक गये थ?' रविने उत्तर में बतलाया– कहीं नहीं, घरसे तो ठीक चला परन्तु माग में स्वामीजीने घर लिया!' कौन से स्वामीजी?'–शिवके पू छने पर रविने कहा–'वही बहिरानन्द जी, जो अपनी कहते और दूसरे की सुनते नहीं!' रविने शिवको बात बढो की 'यही तो उनमें बढ़ब बात है–वह 'अह' में चूर हैं। सत्यको पहिचानने का प्रयत्न नहीं करते। उनमें सत्यगवेषणा की आकाक्षा गहरी नींद में सो रही है!' रविने कहा–'यह तो है ही और वही क्या? दुनिया के लोग गतानुगतिक होते ह। सत्यके सहारे वस्तुस्वरूप को पहिचान लेना बडे भाग्य की बात है।'

शिवने 'हा भाई, यह तो हो ही रहा है'--कहते हुये सागर-तटकी एक नुकीली पहाडी पर आसन जमा लिया। रवि भी पर फलाकर वहीं बठ गया।, दोनों मित्र असीम सागर की गभीरता में कुछ क्षणोंके लिये खो से गय। फिर बोध आते ही शिवने पू छा--'आखिर आज उनसे क्या बहस छिड गई थी ?'

'क्या बताऊँ ?' एक लम्बो सास छोडकर रविने कहा 'वह दूसरो को जड समभते ह और खुद को बृहस्पति।' शिव चुप सुनता रहा। रविने आग कहा 'जड पाषाण को शिल्पी मनमाना रूप दे सकता है, पर स्वामी जी की समझ में नहीं आता कि म तो चेतन हू_पढा लिखा हू। तो उनकी वात को आख मीचकर कसे मान लू ? वह अपनी चिर परिचित मान्यताओं और विचारों से चिमटे भले हो रहें, परन्तु उनको अपने विचारों को दूसरों पर लादने का क्या अधिकार है ?' शिवने बात काटकर कहा कि ठीक कहते हो भाई ! पर दुनिया के लोग हठवादिता में हो बडापन समभते ह। वह अपने मतको बडा बताने और दूसरे को हय जताने की धृष्टता करते ह !'

रवि तिल मिलाकर बोला इस हठवादिता ने लोकका बडा अहित किया है। धम के नाम पर जो भी लडाइया लडीं गई वह इस हठवादिता के कारण। आज भी राष्टो में जो तनाव है वह हठवादिता और स्वार्थपरता के कारण है ! धमतत्व को तो किसी न पहिचाना ही नहीं !'

'धमतत्व तो वस्तुका स्वभाव है। यह मनुष्य को यथार्थता का परिचय कराता है और उसे समन्वय दृष्टि देता है। धमके रूप को मानव ने जाना ही नहीं ! इसी कारण महा अनथ हुये ह !' शिवने कहा !

'इसीलिये तो म इन गतानुगतिक लोगों की अधपरम्परा गत मूर्च्छा का अन्त करने की चेष्टा करता हू।' रवि बोलता

हो गया। 'म इनके हृदय में सम्राट् अशोक का सुनहरा उपदेश अङ्कित कर देना चाहता हू।'

'उनका उपदेश क्या था?' शिवने पूछा। रविने अशोक की निम्नलिखित शिक्षा को दुहरा दिया—

'भिन्न भिन्न पथो म भिन्न भि न प्रकार के पुण्यकाय माने जात ह। म चाहता हू कि उनके सार त वकी वृद्धि हो। सम्प्रदाया के सार की वृद्धि कई प्रकार से होती है पर उसकी जड वाक समय (वचगुप्ति) है अर्थात लोग केवल अपन ही सम्प्रदायका आदर और विना कारण दूसरे सम्प्रदायकी निन्दा न करे।' (१२ वा शिलालेख)

इस शिक्षाको सुनकर शिव बहुत प्रसन्न हुआ और बोला वचनगुप्ति की शिक्षा देकर अशोकने जन मान्यताको प्रधानता दी ऐसा भासता है।' हाँ भाई, अशोक ने जनधम से बहुत कुछ लिया था। जसे वचन गुप्ति जनों का पारिभाषिक शब्द है उसी प्रकार और भी बहुत से ऐसे ही जन शब्द और शिक्षायें अशोक के लेखों में मिलते ह। अपन सबको इसका प्रचार करना कत य है।' रविने बताया।

शिवने खुश होकर कहा 'भाई' बात तो बहुत अच्छी सोची है। मानवता का हित सम्यक ज्ञान के प्रसार से हो हो सकता है।'

'वही प्रयत्न म कर रहा हू। मानव नाम धराकर आज मानवों को मनन करने की भी क्षमता नहीं है। वह यह भी नहीं जानते कि विचार और वितक का शुद्ध रूप क्या है? प्रत्येक तार्किक बनन का दम भरता है, परन्तु तक करता है वे सिर पर के।' रवि बोला। उसकी बात पूरी भी न हुई कि शिव अपनी उत्कंठा को न रोक पाया। वह भी कहने लगा—'आजके लोगों को अपनपन' का भी तो भान नहीं, फिर वह विचार और

वितक को क्या समझें ?'

रवि मुस्करा दिया और सिर खुजलाते हुये बोला—'इसमें शक नहीं आज का युग अनात्मवादी है—भौतिकवाद (Materialism) में अंधे हुये सब विनाशकी ओर दौड़े जा रहे ह। लोग विचार और वितक को मन कहो या बुद्धि (Mind) की उपज मानते ह !' 'तो क्या ये बुद्धि की उपज नहीं ह ?' शिवन पूछा। ह भी और नहीं भी'—रविने उत्तर म कहा और बताया— 'विचार अथ, व्यञ्जन और योगकी सक्रान्ति अथवा उलट पलट का नाम है और वितक सभी श्रुतज्ञान है। मनमें एक भाव आया उसे शब्द रूप मिला, मनयोग से वचनकी प्रवति हुई। उन शब्दों से श्रुतका जन्म हुआ। परन्तु यह विचार भौतिक बुद्धिकी क्रिया होते हुये भी उसका अपना परिणाम नहीं है !'

'सो कसे ? विचार बुद्धि पूवक होता है तब वह बुद्धिका ही परिणाम होना चाहिये ?' शिवने शङ्का की !

रविने कहा-'सो नहीं, विचार बुद्धिक सहारे से अवश्य होता है, परन्तु वह बुद्धि की उपज नहीं, क्यों कि बुद्धि द्रव्यरूप में जिन पुदगलाणुओं (Cells) की बनी है उनमें जानने देखने की शक्ति नहीं है। वह शक्ति चेतन में है !'

शिवने तक किया—'यह तो आपकी मा यता ह !

रविने तडपकर कहा 'नहीं, मेरी मान्यता नहीं, बल्कि तक-सिद्ध विज्ञान है और इसका प्रतिपादन उन महापुरुषों न किया है जो सवज्ञ-सवदर्शी थे।'

'क्षमा कीजिये, यहा आप भी गतानुगतिका में बहने लगे। भला किसीने ऐसा महापुरुष देखा भी है ?' शिवने फिर एक शङ्का की !

रवि यह सुनकर हस पडा और बोला'म और गतानुगतिक ! तीन और छ का अ तर मिटा दो तब यह कहना। जरा

सोचो मेरी बात को। दुनिया के लोगो को देखो। किसी में कम और किसी मे अधिक ज्ञान का विकास देखा जाता है। यह क्या बताता है ?'

शिवने बताया—'ज्ञान की तरतमता।'

'तो इससे क्या यह सिद्ध नहीं हुआ कि पूर्ण ज्ञान भी किसी में होना चाहिये ? वह देखो सागर में–दूर क्षितिज पर धुंए का एक धब्बा दिख रहा है। उसे देखकर यह मल्लाह चिल्लाकर कर रह है कि जहाज आ रहा है।' अभी जहाज दिखा नहीं केवल उसका धुंआ दिखा है। उसके इस आंशिक ज्ञान से समूचे जहाज का परिज्ञान जैसे होता है, वैसे ही मानवों में आंशिक ज्ञान की तरतमता पूर्णज्ञान को सिद्ध करती है। पूर्ण ज्ञानी पुरुष ही सम्यक विचार और सम्यक श्रुतज्ञान का सर्जन करता है।' रविने तर्क के सहारे अपनी बात बड़ी की, जिसे सुनकर शिवन माना कि पूर्णज्ञान होना भी स्वाभाविक अवश्यम्भावी है। रविने उसके भरपाये करने के लिये ऐतिहासिक उदाहरण भी बताया। कहा पूर्वकाल में ऋषभ और महावीर आदि महापुरुष हुये हैं जो केवलज्ञानी थे। भ० महावीर के समकालीन पुरुषों ने उनके वर्णन किये थे और उन्होंने म० बुद्ध से स्पष्ट कहा था कि भ० महावीर (निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी महापुरुष हैं, यह बात बौद्ध ग्रंथों में लिखी हुई है और तर्क सिद्ध भी है।,

'अब यह विषय मेरी समझमें आ गया।'—शिवने कहा।

रवि बोला अभी नहीं, अभी तो विषय अधूरा ही है। विचार जब मनकी उपज नहीं, क्योंकि वह चेतन्यभाव है तब वह किस द्रव्य का परिणाम है ?'

शिवन उत्तर दिया—'चैतन्य प्रभू आत्मा का !'

रविने माना—'यह ठीक है। ज्ञान आत्माका गुण है और

मानस में उस घात-प्रभाव की अभिव्यक्ति अथवा कंपन (Vibration) विचार है। उसीका प्रगट जगतमें शब्द व्यवहार वितर्क है। परन्तु आत्माको आपने कैसे माना ? कैसे यह माना कि ज्ञान आत्मा का गुण है?'

शिवने कहा— दुनिया के सभी धर्म ऐसा मानते हैं।'

रविन सिर हिलाया—'ठीक है यह पर बुद्धिवादी के लिये यह उत्तर अपर्याप्त है।'

'तो आपही बताइये!'—शिवने कहा। रविने फिलॉसफरों की गंभीरता से बूझा और कहा 'जरा विचार करो और देखो आधुनिक मनोवैज्ञानिक मतमें कितना तथ्य है। जब 'कोषों' (cells) का बना 'माइन्ड' है, जिससे वस्तुका परिज्ञान बोध होता है, तो जितने 'कोष' हुये उतने ही ज्ञान हुये। इसलिये जितने कोषजन्य ज्ञानकण होंगे उतने ही अंशों के रूपमें किसी वस्तुके स्वरूप का परिज्ञान होना चाहिये अर्थात अखण्ड रूपमें एक समूची (Wholesome) अनुभूति नहीं होना चाहिये।'

सो कैसे ?'—शिवने पूछा

उत्तर में रविन उदाहरण में एक छोटा सा दर्पण उठाया और दिखाकर कहा—'यह दर्पण अखण्ड है और इसमें वस्तुका प्रतिबिम्ब भी एक अखण्ड दिख रहा है। अब जरा इसे फोड़ दीजिये। इसके टुकड़े टुकड़े हो गये। अब मुंह देखिये इसमें। कितने मुंह दिखते है इसमें ? जितने टुकड़े हैं उतने ही न ? अत यह प्रमाणित हुआ कि जो वस्तु टुकड़ों अथवा अंशों की बनी हुई कम्पाउन्ड' (Compound) होगी उसका व्यवहार भी टुकड़ों जैसा होगा—अखण्ड (Simple) द्रव्यके समान उसकी व्यवहारिक अनुभूति 'एक' अखण्ड (Whole) नहीं हो सकती। चूंकि मानव की मानसिक अनुभूति एक अखण्ड रूपमें होती है, इसलिये वह भौतिक 'माइन्ड' में कणों या कोषों का परिणाम

नहीं हो सकता। वह 'माइन्ड' के पीछे सारे शरीर में जो चैतन्य आत्मा व्याप्त है उसी का परिणाम है—जानना देखना आत्मा का ही गुण है!'

शिवने हर्षित होकर कहा आज बड़ी गंभीर बातें बता दीं। पर एक बात समझ में नहीं आती कि शिक्षित लोग भी ऐसी बड़ी भूल कैसे करते हैं?'

रविने उत्तर में कहा—'इसलिये कि वे अपने इन्द्रियजन्य ज्ञान के 'अहं' में सत्यको नहीं देख पा रहे हैं। वस्तु स्वरूप का परिज्ञान सत्यके द्वारा ही होता है!'

शिवने अचरज से पूछा—तो क्या आंखों देखी बात भी विश्वसनीय नहीं? फिर वस्तुको कैसे जानें?'

'घबड़ाने की कोई बात नहीं!' रविने कहा और आगे बताया। 'जरा सोचो वह दूर का पेड़ तुम्हें छोटा दिख रहा है तो क्या उसका आकार उतना बड़ा है?'

'नहीं, दूरी के कारण वह छोटा दिखता है!' शिवने कहा।

'तो इससे क्या यह फलित नहीं हुआ कि आंखों देखी वस्तु का परिज्ञान सर्वथा विश्वसनीय नहीं होता?' रविने उल्टा प्रश्न किया और शिवको उसकी बात मानना पड़ी। रवि प्रसन्न होकर बोला अब तो आत्मा और मनका स्वरूप समझ गये? मनको तो गणितकी उस मशीन जैसा समझिये जो दिये गये अङ्कों को जोड़ कर ठीक उत्तर देती है परन्तु स्वयं कुछ नहीं कर पाती!'

सूरज काफी चढ़ आया था। दोनों मित्र घर चलने को उठ खड़े हुये। खड़े खड़े रविने कहा— देखा इस महान् सागर को अनेक बार है, किन्तु कभी इसकी फिलॉसफी पर विचार किया?'

शिव रविकी ओर ताक कर बोला—'आज तो भाई, तुम

मेरे लिये पहेलियां बूझ रहे हो !'

'निस्सन्देह प्रकृतिके रूपको और उसके भेद को समझना एक पहेली सी है, परन्तु वह प्रकृति की खुली किताब है। मानव ज्ञानके सहारे उसे बूझ लेता है।'—रविने यह कहा तो शिवने पूछा– सो कसे ?

रवि उत्तर में समुद्रकी ओर इशारा करके बोला -'यह महान् सागर जलकी एक असीम राशि दिख रहो है। वह देखो, अपढ़ ग्रामीण आया और इसे देखकर भौंचक्का रह गया। विस्मय को पीकर अरे ददई ! जाको तो ओर छोर कछ नहीं! जल ही जल है।' वह झुका और कुल्ला किया तो थू थू करने लगा। सभल भी न पाया कि लहर दौड़कर आती हुई दिखी, जिसमें कछुये, मगर, मछली आदि जलचर जोव दिखे। बेचारा ग्रामीण देखकर डर गया। लहर पीछे लौटी तो बहुतसे शख और सीपके टुकड़े उसन देख। ग्रामीण को समुद्रदर्शन से सतोष नहीं हुआ—वह उसके लिये एक भयकर जल देवता बन गया। उसने भयसे आंखें मींचीं और हाथ जोड़कर मस्तक नमाया और चुपचाप लौट गया ! देखा शिव, यह है दुनिया के साधारण लोगों का अज्ञान !'

शिवन गहरी सास उछलते हुये कहा अज्ञान का अधकार मानव को सत्य से दूर भटका देता ह।'

रविने आग कहा-- वह अंधश्रद्धा को जन्म देता है। किन्तु अब जरा उन मास्टर सा० को देखिय जो अपने छात्रों को समुद्र दिखाने लाये ह। वह समुद्रको देखकर भयभीत नहीं ह। अपन छात्रों को उन्होंने समुद्रका वास्तविक ज्ञान कराया ह— उसकी गहराई, ज्वारभाटा आदि का ठीक परिज्ञान कराया है। छात्र जान गय ह कि समुद्रके दूसरे छोर पर एक दूसरा देश है, जहां जल यान द्वारा पहुच सकते ह। मास्टर सा० ने

छात्रों को वर्षा में समुद्र का क्या योग है ? यह भी बता दिया है। समुद्रकी उपज आदिका परिचय भी करा दिया है। इस प्रकार वे छात्र समुद्रके रूप और काम से परिचित हो गये हैं—उन्हें उससे भय नहीं है।'

'शिक्षा भयको दूर करके मानव में पात्रता जगाती है।' शिवने बात को बड़ा किया।

हां हां, यह तो है ही।' रविने सिर हिलाकर कहा और कुछ सोचकर फिर बोला-'किन्तु यह तो हुई साधारण अवलोकन की बात (१) अयथश्रद्धामय अज्ञानी का अवलोकन और (२) शिक्षित का विशेष अवलोकन। किन्तु यह दोनों ही अवलोकन वस्तु के बाह्यरूप और भौतिक प्रक्रिया तक ही सीमित हैं—इनसे वस्तुके स्वभाव का परिज्ञान नहीं होता। वस्तुस्वभाव को जानने के लिये विवेकपूर्ण सम्यक अवलोकन आवश्यक है जो वस्तुके आन्तरिक रूपको भी देखता है।'

शिवने पूछा-'वह कैसे ?'

रविने बताया-'अज्ञानी ग्रामीण समुद्रजल को केवल खारी मानता है और शिक्षित मास्टर भी, परन्तु शिक्षित मास्टर यह भी जानता है कि समुद्र जलका खारीपन कीमियाई ढंग से दूर किया जा सकता है। किन्तु विवेकी अन्तदृष्टा का अवलोकन इन दोनों से विलक्षण होता है—वह मानता है कि जलका स्वभाव या स्वरूप मीठा और शीतल है पर संयोग से उसमें विकार आता है। सूर्य का ताप जब समुद्रके खारी जलको भाप बना देता है तब उसका विकार (खारीपन) दूर हो जाता है और वह अमृत बनकर बरसता है—खेतों में अनाज और सीपी में मोती उपजा देता है। इसलिये समुद्रजल वस्तु स्वरूपमें द्रव्य रूपमें (Reality) शीतल और मीठा होते हुये भी व्यवहारिक (Practical) रूपमें खारी है। यदि उसको मीठा और शीतल

न माना जावे तो विकार के दूर होने पर वह कैसे मीठा और ठंडा हो सकता है? इसप्रकार वस्तु में एक समय में एक साथ ही सामान्य और विशेष गुण मिलते हैं। सागरजल खारी होते हुये भी मीठा और शीतल भी है–यह सम्यग्दृष्टी का विश्वास होता है। अतएव इस विवेचन से हमें वस्तुके अवलोकन की तीन शैलियां मिलती हैं, जो इस प्रकार हैं —

वस्तु अवलोकन

साधारण अन्धश्रद्धाजन्य	विशेष शिक्षाजन्य	सम्यक् अन्तर्दृष्टिजन्य
दोनों मात्र वस्तुका भौतिक परिज्ञान कराते हैं। अन्धश्रद्धामें अज्ञान होने के कारण भौतिक रूपभी ठीक नहीं भासता। आधुनिक शिक्षा अन्धश्रद्धा को खोकर मानव को भौतिक ज्ञान कराती है।	द्रव्यार्थिक (Realistic) जिससे वस्तुके शाश्वत स्वरूपका परिज्ञान होता है।	व्यवहारिक अथवा पर्यायपरक (Practical) जिससे वस्तुके लोक व्यवहार का ठीक परिज्ञान होता है।

शिव यह विवेचना सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और बोला कि 'आचार्यों ने संसार की उपमा सागर से करके एक गहरी फिलासफी सामने लाकर रखदी है। मुझे लगता है कि इस उपमा में उन्होंने 'गागर में सागर' की उक्ति को चरितार्थ किया है।'

'निस्सन्देह यही बात है'—रविने बात को बढ़ाया और आगे कहा–'देखिये न यह उपमा कितनी अर्थबोधक है। जैसे समुद्र अथाह और असीम है वैसे ही संसार भी प्रवाह रूपमें

प्रवाह और असीम है, क्योंकि द्रव्य (substances) सदा सर्वदा रहने वाले हैं। उन द्रव्यों में क्षेत्र, काल भाव, भवकी अपेक्षा निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। ठीक वैसे ही जैसे समुद्र में लहरें उठतीं और मिटतीं रहतीं हैं फिर भी पानी ज्योंका त्यों बना रहता है। संसार में निरन्तर सुख दुख उन्नति अवनति, ज्ञान अज्ञान आदि द्वन्दों का संघर्ष होता है। समुद्र में भी ज्वार भाटे का द्वन्द संघर्ष को बढ़ाता घटाता है। समुद्र में जहां एक ओर बड़े २ भयंकर जलचर जीव हैं तो दूसरी ओर उसी में रत्नादि भी भरे हुये हैं। यही हाल संसार का है–उसमें बुराई भी है और भलाई भी–उसमें पाप कषाय वासना आदि भी हैं तो पुण्यमई साधन भी हैं–धर्म और ध्यान की आराधना करने का सौभाग्य मानव को संसार में ही मिलता है–इसलिये ही संसार सारभूत है। जब समुद्रजल सूर्यके तापसे तपता है तभी वह अपना रूप पाता है—उसका विकार मिटता है–खारी जल मीठा बनकर बरसता है। यही नियम संसार में भी कार्यकारी है। मानव कषायाधीन होकर तपता है तो संसार की सृष्टि बढ़ाता है परन्तु जब वह कषायों को जीतने के लिये तप तपता है तो वह आत्मविकार को धोकर अमृतत्व को पाता है। संसार को सागर बताना बड़ा ही अर्थबोधक है—वह वस्तुस्वरूप के दर्शन कराता है।'

शिवने कहा–'यही तो बात है। आश्चर्य तो इस बात का है कि एक ही वस्तु में विरोधी से दिखते गुणों की सिद्धि इस सम्यक् अवलोकन से होती है। 'खारीजल मूलमें मीठा है'– सामान्य बुद्धि इस रहस्य को नहीं पहिचानती क्यों कि वह वस्तु स्वभाव के दो (१) द्रव्यार्थिक (Realistic) और (२) पर्यायार्थिक (Practical or Imprical) रूपों को नहीं देख पाती है। इसीकारण एकान्तपक्षको गृहण करके लोग हठवादी बन जाते

है।" यह कहते हुये दोनों मित्र घरकी ओर को चल दिये। यदि लोग वस्तुस्वरूप और उसको समझने की ठीक शैली को समझ जावें तो वे हठवादी न बनें। ऐसी चर्चा करते हुये रवि और शिव अपने अपने घरों को चले गये।

निस्संदेह जो जिनवचन में श्रद्धा लाकर सत्यान्वेषी होता है, वह अपना और पराया कल्याण करता ही है। और संसार में सुखी होता है। आचार्यों ने भी कहा है —

'जैनो धर्म: प्रकटविभव: संगति: साधुलोके,
विद्वद्गोष्ठी वचनपटुता कौशलं सर्वशास्त्रे।
साध्वी रामा चरणकमलोपासना सद्गुरूणां,
शुद्धं शीलं मतिरमलिना प्राप्यते नाल्पपुण्यैः॥"

जैनधर्म का प्रकट प्रभाव स्पष्ट है—जो कोई धर्म की आराधना करता है उसे साधुपुरुषोंकी संगति विद्वद्गोष्ठी, वचनपटुता और सर्वशास्त्रों में पारङ्गता प्राप्त होती है। ऐसे धर्मात्मा पुरुष को सुशील साध्वी पत्नी और सद्गुरुओं के चरण कमलों की उपासना भी सुलभ होती है जो अल्पपुण्यसे मिलना कठिन है। अतः सम्यग्ज्ञान की आराधना सदा ही श्रेयस्कर है।

भावों, विचारों और शब्दोंका महत्व ।

सदा की भांति रवि और शिव उसदिन फिर मिले तो उन्होंने उन वर्णीजी महाराज का जिक्र किया जिन्होंने उनके नगर में चातर्मास किया था। उनका प्रतिदिन प्रवचन सुनने के लिये नगर के सभी प्रतिष्ठित पुरुष आया करते थे। दोनों मित्रों ने भी निश्चय किया कि वे भी वर्णीजी का प्रवचन सुनेंगे। तद नुसार वे सभाभवन में पहुंचे उससमय प्रवचन हो रहा था। वे भी एक ओर बठकर प्रवचन सुनने लगे।

वह कह रहे थे कि एकबार जब अन्तिम तीर्थङ्कर सवज्ञ सवदर्शी निग्रन्थ ज्ञातपुत्र भ० महावीर वद्धमान का समवशरण राजगृहके निकट विपुलपवत पर आया था, तब मगध के सम्राट श्रेणिक बिम्बसार उनकी वन्दना करने गये थे। सम वशरण के बाहर उन्होंने एक वक्षकी छाया में शिलापर बैठे हुये मुनि धमरुचि को देखा--वह ध्यान मुद्रामें बठे दिख रहे थे। श्रेणिकने वन्दनाकी और पाससे देखा तो वह उनकी रग बदलती हुई मुखाकृति को देखकर आश्चय चकित रह गये! मुनिका सौम्य मुख विकृत दिख रहा था। ऐसा लगता, मानो क्रोधके कारण वह नीले पड रह ह। श्रेणिक की समझमें कोई बात न आई। वह आग बढ़कर समवशरण के भीतर पहुचा, जहा सम भाव ताण्डव नत्य कर रहा था—परस्पर विरोधी स्वभाव के जीव भी अपना वर बिसारे हुये शान्ति और सुखसे बठे हुये भगवद वीर के दशन और उनकी अमृतवाणी का रसपान कर रह थ। श्रेणिक ने गन्धकुटी के पास जाकर सिंहपीठिका के

ऊपर कमलासन को स्पर्श करते हुये अंतरीक्ष विराजमान तीर्थंकर प्रभु को देखा-मस्तक नमाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर तीन प्रदक्षिणा देकर ज्यों ही वह नरकोठे में बठे, त्यों ही उन्होंने दिव्यध्वनि में अपने मनमें उठते हुये प्रश्नका उत्तर सुना। जीवनमुक्त परमात्मा महावीर घट घट की बात जानते थे। श्रेणिक ने प्रसन्न होकर सुना कि जिन मुनिमहाराज को उसने वृक्षतले बैठा देखा था वह मुनि धमरुचि हैं। नगर में जब वह आहार लेने गये तो जनता उनको देखकर आवाज कसने लगी! किसी ने कहा- यही चम्पाके राजा श्वेतवाहन हैं। अपने अल्हड उमरके पुत्र विमलवाहन को राजभार सौंपकर मुनि हुये हैं। कितने निठुर हैं! बालक को युवा तो हो जाने देते?' दूसरे ने कहा-'असमय बालक भला क्या शासन सभालता? अब तो मंत्री ही राजा बन बैठे हैं और राजपुत्र बंदी बना है।' लोगों की ये बातें सुनकर मुनि धमरुचि पुत्रके मोह में विह्वल हो गये और आहार लिये बिना ही उलटे पाँव वनको लौट आये। अब वृक्षके नीचे बैठे हुये क्रोधानल में जल रहे हैं। इसी कारण उनके मुखपर कृष्ण, नील और कापोत रंग की लेश्यायें संक्लेश परिणामों की तरतमता के अनुसार रंग बदल रहीं हैं। कदाचित् एक मुहूर्त तक उनकी यह अवस्था रही तो वह नर्क आयु का बंध कर लेंगे। अतः श्रेणिक जाकर उन्हें सम्बोध दें। दिव्य ध्वनि में यह सुनते ही श्रेणिक मुनि धमरुचि के पास पहुंचे और उन्हें संसार और उसके सम्बन्धों की निस्सारता का बोध कराया और बालक पुत्रको संकट से छुटाने का आश्वासन दिया। मुनि धमरुचि विवेकी तो थे ही -केवल एक तूफान में बह उठे थे— श्रेणिक की बात सुनते ही संभल गये। जो विकार उनके भीतर छोप रहा था, वह एकदम उमड़कर नष्ट हो गया। तूफान मिट गया। अनन्त शान्तिका साम्राज्य उनके हाथ आया। धमरुचि

एक्दम केवलज्ञानी हो गये । इस ऐतिहासिक घटना से भावों, विचारों और शब्दों का जो महत्व मानव जीवन में है, वह स्पष्ट होता है । मानव अपने अच्छे बुरे भावो और विचारों के अनुसार ही भला और बरा बनता है । 'जैसा बोज बोओ वैसा फल पाओ का कारणकार्य सिद्धात (Law of Causation) यहीं सोलह आना चरितार्थ होता है । भावकर्म के अनुरूप ही द्रव्य कर्म बनता है । अत मानव के जीवन में भावो और विचारोंका मौलिक प्रभाव सर्वोपरि है । अलबत्ता बाह्यनिमित्त (Outer sensations)भी भावों को भडकाने में अपनी महत्ता रखते है । मुनि धमरुचि ज्ञान ध्यान और समता की प्रतिमा ही थे, किन्तु वह भी बाह्य निमित्त से क्रोधानल में जल उठे थ–बात की बात में उनके भावों में क्रोधका विकार उठा था । यह विकार स्वय उनके भावावेग का परिणाम था। जैसे पवनका झोका ढकी आग को चमका देता है—आगकी दबी हुई चमक स्वय जगमगा उठती है, ठीक वैसे ही उदासीन रीतिसे बाहरी निमित्त भी आत्मभावों को जागत कर देते है । बाह्य प्रसग कदाचित कषायला हुआ तो आत्मभाव भी कृष्ण, नोल और कापोत रग के विचारों में पलट खाने लगता है और कदाचित वही समभावी हुआ तो आत्मभाव पीत पद्म और शुक्ल रगके विचारों में मग्न हो जाता है । मुनि धमरुचि जब क्रोधमें जले तो उनकी मुखाकृति ही काली नीली हो गई और जब श्रेणिक ने उनको सत्यका स्मरण कराया तो वह समता भाव को जगा बठे--उनके विचार उत्तरोत्तर निर्मल होते हुये शुक्लध्यान की कोटिके बन गये, जिनके परिणाम स्वरूप वह पूर्ण सुखके अधिकारी हुये ।

किसी मानव का वयक्तिक जीवन स्व और पर के लिये कितना उपयोगी है, इसका मापदण्ड भाव और विचारों की तरतमता की बोधक छ लेश्यायें ह, जो कृष्ण, नील, कापोत

और पीत, पद्म, शुक्ल कहलाती हैं। भ० महावीर ने इन्ह या उनके तारतम्य अर्थात तीव्र और मन्द भावों के द्वारा मानव का दैनिक जीवन व्यवहार अच्छा अथवा बुरा बनता है मानव की स्वेच्छाचारिता और विवेक का पता उनसे चलता है। उनके अनुसार ही आत्मा कर्म से लिपटी है—आत्मा के ऊपर एक सूक्ष्म पुद्गल का आवरण छा जाता है। इसीलिये नीच और विचार मात्र कहने भर के लिये नहीं बल्कि वे मूर्तमान रूप (Concrete Form) धारण किये हुये हैं। अच्छे और बुरे विचारों के छायाचित्र भी लिये जा सकते हैं।

मानवों में मुख्यतः मिथ्यात्वभाव की होती है—मिथ्यात्व भाव में मानव स्व पर के स्वभाव से अनभिज्ञ होता है—इस दशा में वह परिस्थितियों का दास बन जाता है—आहार, भय मैथुन और परिग्रह नामक संज्ञाओं में सना रहकर वह रत अरति, क्रोध मान आदि कषायों में अंधा होकर पशुतुल्य व्यवहार करता है। उसका क्रोध पत्थर पर की लकीर जैसा स्थायी होता है—उसका लोभ इतना तीव्र होता है कि फलके लालच में वृक्षको मूलसे काट डालने का घृणित उद्यम करता है—सोनेका अंडा देने वाली मुर्गी को जैसे एक लोभीने इसलिये पेट चीरकर मारडाला था कि उसको सब अंडे एक साथ मिल जायेंगे ऐसी ही इस अनन्तानुबंधी कषायवाले की क्रिया होती है, जो मानवता के लिये भयङ्कर है। ऐसे कृष्णलेश्या वाले मानवों को दूसरोंका क्या, अपना भी ख्याल नहीं होता। ऐसे मानव हिंसोपजीवी म्लेच्छ होते हैं, क्योंकि मानव होकर भी वे मानवता से रहित होते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान वेत्ता फ्रौइड (Freud) ने मानव की मानस स्थिति अर्थात् विचारों को तीन श्रेणियों में (१) इद, (२) ईगो ego और (३) सुपर ईगो super ego में बांटा है। इद श्रेणीका मानव मानवता के लिए ही एक खतरा है

वह काम क्रोध में फंसा रहता है, उसे अपना भी ममत्व नहीं, दूसरे की तो बात ही न्यारी। एक हिंसानन्दी मानव रूप दानव था। उसे निरन्तर हिरनोंका शिकार करने और मौजमजा उड़ाने का नशा सवार रहता था। ऐसे हिंसानन्दी व्यक्ति के जीवन का अन्त भी हिंसामय होता है। उक्त शिकारी के विषय में यह सत्य सोलह आने चरितार्थ हुआ था। अन्त समयमें जब वह बीमार पड़ा तो हर समय शरीर पर थप्पड़ मार मार कर चिल्लाया करता था कि 'यह गोली लगी–हिरनोंने सींग घुसेड़ कर पेट चीर दिया।' और इन्हीं हिंसक विचारों के साथ उसका शरीरान्त हो गया!

फ्रायड (Freud) ने 'ईगो' श्रेणीमें व्यक्तिके विचारों में 'अपनेपनके बोध' का जागृति होती बताई है। उसको उन्होंने तीन भागों (१) सचेत (conscious) (२) अव्यक्त सचेत (pre conscious) और (३) सुप्त (unconscious) में विभक्त किया है। सचेत विचार श्रेणीका 'ईगो' स्वार्थ को लक्ष्यमें लेकर जीवन व्यवहार करता है। लोक में सर्वत्र यह देखने को मिलता है। जैन दृष्टिसे इस भांत विचारमें मिथ्यात्व और औदयिक भावों की प्रबलता होगी और चारित्र कालो कोटि का तो नहीं, पर नील और कापोत कोटिका होता है। औदयिक भाव से अभिप्राय उन भावों अथवा विचारों से है जो संचित कर्मों के उदय होने पर उनके अनुरूप पनपते हैं। इन विचारों में मानवकी स्वाधीन आत्मवृत्ति प्रायः सुप्त पड़ी रहती है–मानव अपने स्वार्थ साधन की बातों में मगन रहता है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह में इस कोटिके विचारों वाला मानव भी सना होता है, पर उसमें हिंसक भाव कुछ कम होते हैं। उसका क्रोध खेतमें की गई हल पंक्ति की अवधि जितना गहरा होता है। परिग्रह जुटाने–संग्रह करने की दुर्भावना उसमें रहती है परन्तु जड़ मूल से उखाड़

वक्षको घर ले आने की धष्टता वह नहीं करता–वह वृक्षकी शाखा अथवा टहनी को तोड़ लेकर सतोष धारण करता है। इसी लिय उसकी लेश्यायें नील और कापोत रग की होतीं ह। आज साधारणत लोग इसी कोटिके हो रहे हैं। अव्यक्त सचेत 'ईगो' विचार में आत्मबोधक उच्च वतियों को जागत किये जाने का अवसर मिलता है। साधारणत इस विचारसरणी के मानव जन दष्टि से क्षायोपशमिकभाव प्रधान होते ह, जो असम्यक और सम्यक-दोनो प्रकार के श्रद्धान को रखन वाले हो सकते ह।

क्षायोपशमिक भाव सत्य और असत्य वस्तुस्थिति का मिश्रित विचार है। उसमें उन कर्मोंका जो आत्माके दर्शन ज्ञान आदि गुणों को घातते ह बिनाफल दिये ही झड जाने व कुछ सवघाती कम स्पद्ध को (Group of Karmic molecules) का सत्तामें निष्क्रिय होकर दबजाने तथा देशघाती कर्मों अर्थात् उन कर्मोंके जिनसे आत्माके भावस्वरूपगुण जसे सम्यक्त्व, चरित्र, सुख, चेतना, स्पश रस आदि, को आशिक रूपमें आवत करे–ढक दे, उनके उदयमें अर्थात फल देनेको उन्मुख रहने पर जो भाव और विचार होते ह उनका क्षायोपशमिक कहते ह। इसभावको समझाने के लिये आचार्योंने कोदा का उदाहरण दिया है जो एक प्रकार का मादक धान्य पदाथ होता है। जिससमय कोदो को जल से धो देते ह तो उस समय उसकी मादक शक्ति कुछ अशों में कम हो जाती है और कुछ उसमें बनी रहती है। जिस प्रकार कोदों मिश्र मादक शक्ति रखता है वसे ही क्षायोपशमिक भाव भी मिश्र रूपका है। स्मरण रहे कि जन दर्शन में कम मन वचन काय की क्रिया का द्योतक मात्र नहीं है बल्कि ये क्रियायें जब अप्रतदशामें कषायाधीन होकर की जातीं ह तब एक सूक्ष्म पुदगल को आकर्षित करके कालविशेष के लिये आत्मा से बाध

देती हैं, इनको ही कर्म कहते। क्षायोपशमिक भाव में कर्मों के क्षय (चेतन से अलग कर देनेके) कारणों के उपस्थित होने पर कर्म की कुछ शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और कुछ सत्तामें मौजूद रहती हैं और कुछ उदय में आकर जीवन व्यवहार में फलित होकर अपना प्रभाव दिखाती हैं ऐसी मिश्र अवस्था में जो भाव होते हैं, वे क्षायोपशमिक हैं। ऐसे व्यक्ति के परिणाम कृष्णादि लेश्याओं जैसे कुटिल तो नहीं होते परन्तु वे मिथ्या श्रद्धा-अथ अज्ञान से अलिप्त भी नहीं होते। ऐसे व्यक्ति में अपने और अपने सगे सम्बन्धियों के स्वार्थ साधन का मोहभाव जागरूक होता है-अतएव एक हदतक उसका जीवन धर्म व्यवहार कुशल होता है। वह फलदार वृक्ष के पास पहुँचेगा तो अपने और अपने आश्रितों के भरण पोषण के लिये गुच्छे गुच्छे तोड़कर ले आयगा-इस बातकी परवाह न करेगा जो वह पके-पके फल ही ले। किन्तु ज्यों ज्यों उसमें अध्यात्म चेतन भाव जाग्रत होते जावेंगे त्यों २ उसकी संतोषवृत्ति बढ़ती जायेगी—उसको सम्यग्दृष्टि मिल जावेगी, जो उसके भीतर विवेक को जगा देगी। तब वह अपनी आवश्यकता के अनुसार केवल पके हुए फलों को लेकर ही संतोष करेगा—उसके भावों की लेश्या पद्म होगी। किन्तु उसी व्यक्ति में जब विवेक की प्रबलता हो जायगी तो वह भेद विज्ञानी बन जायेगा अर्थात उसकी विचार सरणी वस्तु का ठीक विश्लेषण और समन्वय करके उनके स्वरूपको पहिचानने लगेगी जीव और अजीवके भेद को वह जान जायेगा। ऐसा व्यक्ति आदर्शवादी होगा-वह आदर्श के लिये जायगा-संसार के प्रलोभन उसके प्रशस्त मार्ग का अवरोध नहीं कर सकेंगे। वह निष्काम हो करके अपने लौकिक जीवन में कर्तव्यों का पालन करेगा। उसकी निस्पृहता अपूर्व होगी-शांति और सुख का सागर उसके अंतर में हिलोरने लगेगा। ऐसा आदर्शवादी व्यक्ति महा

सतोषी होगा–वह फलदार वृक्षके पास पहुँचकर भी उससे फल तोड़ेगा नहीं क्योंकि वह जानता है कि उसकी इस क्रिया से वृक्षको कष्ट होगा। अत वह पके हुए फल जो स्वत चूकर गिरे ह उनको लेकर सतोष करेगा। यह उसकी अपार अहिंसक वृत्ति होगी—निमल और धवल! सभवत इस आदश विचार की अभिव्यक्ति को आयडने 'अर्कांगस ईगो' विचार कहा है! यदि लोकम इस आदश कोटिके विचार वाले मानवो की सख्या अधिक हो जावे तो यह मत्यलोक ही स्वग बन जाये! किन्तु आजकल लोक सुखसमृद्धि के लिए आँख मीचकर केवल उद्योगीकरण के पीछे भागा जा रहा है। उद्योगीकरण बुरा नहीं है, परन्तु वह विवेकपूण होना चाहिये। मानव कितनी ही बाह्य समृद्धि कर ले, परन्तु केवल इतने मे वह सतोषी और सुखी नहीं होगा। उसने अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओ को निरकुश छोड रक्खा है—उसकी प्रवृत्ति स्वाथ प्रधान हो रही है। अमेरिका और यूरुप इस बातके प्रत्यक्ष उदाहरण ह। उन्होंने भौतिक उद्योगीकरण में पराकाष्ठा को प्राप्त किया, किन्तु उनका यह उद्योग उन्हीं के लिए विनाश का पिशाच बना, जिसने दो दो महायुद्धों म मानवता का ही अन्त सा करके दिखा दिया। अत भौतिक उद्योगीकरण विवेक पूण होना चाहिये—उसके साथ जनताको आत्मज्ञान बोधक शिक्षा भी देना आवश्यक है, जिसमें उसके भीतर काले रगका 'अह सर्वोपरि जागत नहीं रहे। आजकल भारत में हिंसा और पापाचार बढ़ रहे ह। मानव नतिकता क्या मानवतासे भी दूर भटकता जा रहा है। भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। चाहे जनता हो अथवा अग्रकोटिक नागरिक, सभी इस बहिया में बह जा रहे ह। ऐसे विषम समयमें विवेकपूण आदश विचार भावको जागत करने के लिये चारित्रवान आदश वादी त्यागवीरों को जनताके बीचमें आकर राम और महावीर

को आदर्श नियमों को पसारने की आवश्यकता है। मेरा मत भावी त्यागवीर औषधि, वस्त्र और साहित्य लेकर ग्रामों में जावें और ग्रामीणों के साथ रहकर उनके दुख सुखको बराबर उनमें आदर्श विचारों को भर दें। प्रत्येक धर्म प्रेमी का इस पुनीत कार्य को सफल बनाने में सहयोगी होना कर्तव्य है। शासन इस मार्गको सक्रिय रूप दिलाने में बहुत कुछ कर सकता है। इसका परिणाम यह होगा कि जनता के विचारों में क्रान्तिक परिवर्तन हो जायेगा और तब उसका दैनिक व्यवहार नीति और न्यायपूर्ण होगा। सभी एक दूसरे का ही नहीं, बल्कि मूक पशुओं के भी सुख दुखका ध्यान रखकर सुखी होंगे। तब सुपर ईगो' का विचार चुपचाप मानव के विचारों में पवित्रता ला देगा। बाह्य निमित्त यदि आदर्श होंगे, इसलिये उनके परिणाम भी आदर्श होंगे। इस प्रकार आप देखिये विचारों और आदर्शों का जीवन व्यवहार में कितना भारी महत्व है। पानी नीचे की ओर स्वतः बह जाता है—किन्तु ऊपर पहुंचाना हो तो उसके लिए महती उद्योग करना होता है—अन्यथा सहारा लेना पड़ता है। यही हाल लोकका है। लोकरुचि निम्नतर विचारों वाले, नाले और कापोत लेश्याओं—आकांक्षाओं की ओर स्वतः दौड़ जाती है और यदि उसमें अवरोध हुआ तो तूफान उठ खड़ा होता है। मानव का महती 'अहं' (Super ego) तिलमिला उठता है और संघर्ष खड़ा कर देता है। अतः ऐसे संघर्षों से समाज की रक्षा करने के लिये लोकरुचि में आध्यात्मिक ज्ञान का पुट ऐसी प्रेम मई रीति से चढ़ाया जाना चाहिये कि वह अग्राह्य न हो। यह स्मरण रखिये कि जीवात्मा का स्वभाव शान्त और अहिंसक है—वह उतना ही शीतल है जितना जल। जैसे आगके संसर्ग से जल गर्म हो जाता है, वैसे ही जीवका शीतल स्वभाव भी काम क्रोधादि के कारण तप्त हो जाता है। यह सत्य जब लोक

रुचिमें रम जावेगा तब लोक आदर्श मय ऐसा ही होगा जैसा रामराज्य में होता है। सभी ज्ञानी बनने की होड करेंगे, क्योंकि ज्ञान से ही सृजन किया जा सकता है। अत भाइयो, आत्मा के स्वरूप को पहिचानकर भावों, विचारों और शब्दोंका महत्व आंकिये और अपने भावों, विचारों और शब्दों को ऐसा प्रशस्त प्रभावशाली बनाइये कि दुनिया म आप चमक जायें--आप स्वय महान बनें और लोकको महान बनाइं। इसके लिय आपको अपना मन वशमें रखना होगा--उससे ठीक २ काम लेना होगा। आप यह स्मरण रक्खें कि आप किस कोटिके मानव बनना चाहते ह। लोकमें आपको निम्न प्रकार के मानव मिलेंगे, जिन की विवेचना पहले की जा चुकी है --

(१) निम्नतम कृष्ण विचार शलीके मानव, जिनकी पाश विक वत्ति होती ह, क्योंकि उनमें ज मजात सज्ञायें (Instincts) प्रबल होतीं ह।

(२) नील और कापोत विचारों वाले मानव, जो अहके घमड में चूर और स्वाथ में अधे होते ह। उनका ज म यदि धनीवग में हुआ तो वे मानवता के लिय बडे घातक सिद्ध होते ह। उनका जन्म यद्यपि उत्तमस्थिति में होता है, परन्तु बुरे विचारों और बुरी सगति में पडकर वे कुकर्मों को करके समाज म बुरी दशाको सिरजते ह। कदाचित वे निधन हुये और सुशिक्षा भी उनको न मिली तो वे आत्माके रूप और यायनीति को न जानकर कुमाग में जा पडते ह। निधनी होनके कारण पकडे जाने पर वे 'अपराधी' कहलाते ह। शिक्षित धनी भी स्वाथ साधता है-दूसरो का माल छीनता है, पर नीतिका जाम बिछा कर--इसलिये वह 'अपराधी' नहीं कहलाता, परन्तु निधनी सीधेढग से पराया माल हडपता है, इसलिय वह 'अपराधी' गिना जाता है। किन्तु सिद्धा त की दृष्टि में वे दोनों एक ही स्तर

पर हैं।

(३) तीसरे प्रकार के मानव प्रीत और पथ्य विचार वाले मानव हैं जिनके हृदयमें विवेक जागृत होता है–उन्हें स्वयं अपना और अन्य प्राणियों के आत्महित का बोध होता है। वे चाहे अमीर हों और चाहे गरीब, सदा सन्तोषी रहते हैं। उनकी अहिंसक वृत्ति होती है। एक श्रावक इसी कोटिका मानव होता है, जिसे महाकवि बनारसीदास जी ने इक्कीस गुणधारी कहा है—

"लज्जावन्त दयावन्त, प्रशान्त, प्रतीतवन्त,
परदोषको ढकय्या, पर-उपकारी है।
सौम्यदृष्टि, गुणग्राही, गरिष्ठ, सबको इष्ट,
शिष्टपक्षी, मिष्टवादी दीरघविचारी है॥
विशेषज्ञ, रसज्ञ, कृतज्ञ, तज्ञ, धर्मज्ञ,
न दीन, न अभिमानी, मध्यविवहारी है।
सहज विनीत, पाप क्रिया सौं अतीत, ऐसो
श्रावक पुनीत इकवीस गुणधारी है॥'

किन्तु आश्चर्य है कि आज जनों में ऐसे श्रावक बहुत कम मिलते हैं।

(४) चौथे वे सन्त मानव हैं जो आत्मसाधना में लीन हैं और शुभ्र विचारों के आलोक में आत्मक्षेत्र में ऊँचे उठ रहे हैं। इन्हीं को लोकके लिये प्रकाश रूप कह सकते हैं। अब आप विचार कीजिये कि आप इनमें से किस श्रेणीके मानव हैं और क्या बनना चाहते हैं? आपमें महत्वाकांक्षा जागृत रहे तो बुरा नहीं, पर उसकी सिद्धि विवेक से ही हो सकेगी। आप मनको एकाग्र कीजिये निस्सन्देह मनको एकाग्र रखना सुगम नहीं। इसके लिये आपको साधना करना पड़ेगी, क्योंकि जब मन अपने आधीन नहीं तो वचन भी समीचीन नहीं होंगे। लोग बात बातमें चालाकी बरतते हैं। मन जो वशमें नहीं–इसीकारण हाथ भी

मनमाना करता है। वह भी बहकता है—बहके हुये हाथ से ठीक ठीक निर्माण नहीं हो पाता। अत मनकी शुद्धि परमावश्यक है। जन गुरु इसीलिये तीन गुप्तियो का उपदेश देते ह जिनमें मनोगुप्ति पहिली है। इसमें मन पर अधिकार जमाकर उसे मा माना भटकन नहीं दिया जाता। तभी वचन और काय गुप्तियां ठीक से सधती ह। अभ्यास करने से मनोगुप्ति की साधना सुगम हो जाती है। दनिक जीवन व्यवहार म मनको एकाग्र रखकर काम करने की आदत डालिये और देखिये कितनी सफ लता मिलती है ? काम चाहे छोटा हो या बडा, जल्दी का हो या देरका, घरका हो या बाहरका उसमें पूरा मन लगा दीजिये। पत्र लिखो तो लिखने में तल्लीन हो जाओ—जबतक पत्र पूरा न होवे मनको दूसरी ओर न जाने दो—उसे स्थिर रक्खो। अत में तुम पाओगे कि एक बडा सुदर पत्र लिख गया है, जिसकी तुम आशा न रखते थे।

मनको स्थिर और पवित्र रखने के लिये प्रात उठते साथ ही महापुरुषो का चितवन करो—उनके लोकोपकारी कार्यों को ध्यान म लो और उनके रूपके विचार में मगन हो जाओ। ऐसा करन से हृदय विशाल और बलवान होगा। श्रद्धालुजन भगवद्ध्यान करते और जाप देते ह, किंतु मनको एकाग्र रखने के अभ्यासी म होने क कारण उनसे पूरा लाभ नहीं उठा पाते। मनको महव कर दो अपने आदश में सिद्धि तुम्हारे पर चूमेगी। एक रमणीका प्रेमी सेनामें सिपाही था—उसे रणाङ्गण में जाने की आज्ञा हुई। रमणी यह सुनते ही तिलमिला उठी और प्रेमी से मिलने की धुनमें सुधबुध खो बठी। लोगो ने कहा—'सेनामें स्त्रियों को जाने नहीं दिया जाता।' पर उसने किसी की न सुनी। वह शिविर में पहुची प्रेमीके डेरे का पता लगाया और तीर सी उसकी ओर उड चली। माग म शिविर अधिकारी, जो

एक मुसलमान था, नमाज पढ़ रहा था। रमणी उसके जानमाज को रौंदती हुई अपने प्रेमीसे जा मिली। लौटी तो अधिकारी ने उसको उलहना दिया, तो वह बोली—

'नर राची सूझी नहीं तरी जा नमाज।
पढ़ कुरान बौरे भय, ना राच भगवान॥'

अधिकारी सुनकर लज्जित हुआ। मनकी एकाग्रता से रमणी अपने उद्देश्यमें सफल हुई परन्तु मनको एकाग्र न रखने के कारण अधिकारी को भगवद्दर्शन तो दूर, उल्टा लज्जित होना पड़ा। इसलिये मनको एकाग्र रखने का अभ्यास करना उपादेय है। स्नान करो तो एकाग्रमन और पवित्र भाव से। शरीरका मल तो सभी दूर करते हैं, परन्तु शरीर तो मलका घर है—उसका मल दूर नहीं होता। उसका मल मनका मल धोने से दूर हो जाता है। अतः काम क्रोधादि आन्तरिक मल को धोनेका भी विचार स्नान करते हुए रखिये। यह आत्मसङ्केत कीजिये कि आपका पापमल धुल रहा और मन पवित्र हो रहा है। इस परिपोषक आत्मसङ्केत (auto-suggestion) से आपका मन अवश्य ही स्वच्छ होगा। स्नानादि समयों के मन्त्र इस मनोविज्ञान के आधार पर ही रचे गए थे। इसी प्रकार आहार करते समय मन शुद्धिका ध्यान रखिये। बाह्यमें क्षेत्र, जल और आहार शुद्ध होना चाहिये। क्षेत्रमें हिंसा न होती हो, जल स्वच्छ हो और आहार हिंसोत्पन्न न हो—तामसी भोजन मनमें विकारों को बढ़ाता है। अतएव शाकाहार-सा सात्विक भोजन करना उचित है। ऐसे भोजन को खाते समय ऐसा विचार करना चाहिये कि यह भोजन शीघ्र पचकर स्वास्थ्य को ठीक रक्खेगा जिससे मेरा मन दृढ़ और जितेन्द्रिय रहेगा। मैं आत्मबली बनकर सब पर हित साधने में अपनी शक्ति को लगा दूंगा। अपने आप वृक्षपर पककर चूये हुये फलों का आहार सर्वोपरि है। उसमें हिंसा नाम मात्र

को है और स्वास्थ्य के लिये भी सवश्रेष्ट ! इस प्रकार यदि आप दनिक जीवन व्यवहार को एकाग्रमन होकर उच्चभावना पूर्वक करेंगे तो आप जीवन में सफल मनोरथ होंगे। अभ्यास करते रहने से आपका मन वशमें हो जावेगा। आप सच्ची श्रद्धा को जगाये रखिये और सोचिये कि —

'अहाान तवीर्योऽयमात्मा विश्व प्रकाशक ।
त्रलोक्य चालयत्यव ध्यान शक्ति प्रभावत ॥'

'विश्वको प्रकाशित करनेवाला यह आत्मा अनन्त शक्ति शाली है और ध्यान शक्तिके प्रभाव से यह तीनों लोकको चला सकता है।' आत्मबल का दृढ़ श्रद्धान मानव में सम्यक ज्ञानका प्रकाश चमका देता है और उस प्रकाशमें उसका दनिक व्यवहार आदर्श और सफल होता है। अत भाइयो ! सदा ही यह शांति भावना भाइये और अपने भावों को समीचीन बनाते चलिये —

'शिवमस्तु सवजगत परहित निरता भवन्तु भूतगणा ।
दोष प्रयातु नाश सवत्र सुखिना भवन्तु लोका ॥'

सब जगतका भला हो, परहित साधन में सारे ससारी जीव लगें, दोषों का सवथा नाश हो और सवत्र सबलोग सुखी हों।'
ॐ जयशांति !'

वर्णीजी के सुलझे हुये विचारों को सुनकर दोनों ही मित्र बहुत प्रसन्न हुये और चरचा करते हुये घरकी ओर चल दिये। शिवने कहा देखा भाई ! कितने सुन्दर विचार ह। मनही सारी बुराइयों की जड है।' रविने उसकी बात बडी करने को कहा— 'यह तो है ही—आत्मभाव का उपयोग मनोयोग द्वारा ही होता है—अतएव मनकी शुद्धि परमावश्यक ह, जिसके लिये आत्माकी अनन्त शक्तियों का विश्वास होना भी आवश्यक है। प्रसिद्ध विचारक मिसिज एनीबेसेंट न लिखा है 'Have faith in the ultimate triumph of the evolution of the soul

within you which nothing can finally frustrate'
अर्थात 'अंतरस्थित आत्माके पूर्ण विकासमें अंतिम विजय पानेका विश्वास अटल रखिये—फिर उसमें अवरोधक कोई विघ्न ही न रहेगा।' शिव यह सुनकर चकित हो बोला—'अरे! यह पाश्चात्य लोग भी आत्मा और उसकी अनंत शक्ति में विश्वास रखते है, यह खूब कहा।' रविने स्पष्ट करते हुए बताया—'अब तो पाश्चात्य विचारक ही नहीं विज्ञान वेत्ता भी आत्माका अस्तित्व स्वीकारते और बाह्य निमित्त की प्रक्रिया कैसे होती है, इसका अन्वेषण और प्रदर्शन करते है।' शिव पुलकित हो बोला—'यह तो बडी अच्छी खबर है जरा विस्तार से कहो न!' रविने कधे ऊचे करते हुये कहा—हा हां, सुनो—मै बताता हू। जनवरी १९५५ में इटली के सोरेंटो (Sorrento) नगर में विश्वके वैज्ञानिकों का एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें प्रो० मार्को टोडेशिनि (Prof Marco Todeschini) ने अपनी शोधका निष्कर्ष बताया था, जिसका नामकरण उन्होंने 'साइको बायो फिजिक्स' (Psycho bio physics) रक्खा है।' शिव बीचमें बात काट कर बोला—'नाम तो रोचक है, पर इसमें क्या सिद्ध किया है?' रविने कहा 'यही तो सुनिये। प्रो० सा० ने इसके द्वारा एक मार्के की शोधका रहस्योद्घाटन किया है। उन्होने अध्यात्मवाद और गणित पर आधारित हेतुओं के द्वारा यह निरूपण किया है कि लोक में मूलत आकाश (Space) के तरल कोष (fluid inerts) भरे हुए है जिनके परिवर्तनों के प्रति निमित्त रूपमें आणविक ज्योतिष्क चली है, जो हमें पुद्गल जैसी भासती है। इनकी प्रक्रिया जब मानव की इन्द्रियों पर होती है तो वह हमारे आत्मा में नर्तन, विद्युत, प्रकाश, शब्द, गन्ध, रस आदि की भावनाओं को जागत करने में कारण होती है। हमारे भीतर विद्युत प्रक्रिया पैदा करती है—बाह्य उत्तेजना

भीतर पहुंचकर किस प्रकार विद्युत प्रक्रियाओं नाली पर हमारी अंतरात्मा (Psyche) में नये २ विचारों और भावनाओं को उत्पन्न करती है-यह सब उन्होंने प्रत्यक्ष बताया और सिद्ध किया कि लोक एक शाश्वत प्रवाह है, जिसमें मानव शरीर सना हुआ है और आत्मा उसके भीतर चमक रहा है।"* शिवने हर्ष प्रगट करते हुये कहा कि यह तो विज्ञान में क्रांति ला देगा।'

'निस्संदेह!' रविने जोर से कहा और बताया-'काश इन प्रो० सा० को जैनसिद्धान्त के अणुवाद का परिज्ञान कराया जावे! किन्तु खेद है, जैनी इस प्रकार की मौलिक खोजों को आगे बढ़ाने में कोई भाग नहीं लेते।'

शिवने कहा-'यही तो अज्ञानता है। समाजका लाखों रुपया प्रतिवर्ष दिखावटी बातों में खर्च होता है, कदाचित उसका चतुर्थ अंश भी ऐसे शोध कार्यों में खर्च हो तो अपूर्व ज्ञान प्रभावना हो। उपरोक्त खोज से बाह्य निमित्तों का महत्व आंतरिक भावों को जगाने में कितना कार्यकारी है, यह स्पष्ट है।'

रविने समर्थन में कहा-'यही तो बात है कि जैन तीर्थङ्करों ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका पारस्परिक प्रभाव जीवन में पड़ता बताया है।'

शिवने विदा लेते हुए कहा-'अच्छा भाई, अब आज्ञा दीजिये फिर मिलेंगे।' दोनों मित्र अपने २ घर गये।

---

* Prof Marco Todeschini explained with psycho mathematical arguments how the Universe consists of fluid inert spaces only the rotating movements of which represent the atomic astronomic system which appear to us as matter and their undulatory movements when they hit our sensory organs cause in our psyche feelings of force electricity light sound heat smell taste etc Considering actions and reactions between cosmic space and the human body which is immersed in it the scientist expounded the marvellous electronic technology of the nervous system

(३)

तत्त्व बोधके लिये वितर्क की महत्ता और शब्द प्रयोग।

शिव सोच रहा था, ऐसा क्या कारण हुआ जो रवि कल न आया? कहीं अस्वस्थ्य तो नहीं हो गया? किन्तु जब उसने दृष्टि फेंकी तो गलीकी मोड पर उसे रवि आता हुआ दिखाई दिया। वह मित्रको लेने आगे बढ़ गया। उसने उत्सुकता से पूछा 'भाई! कल कहां रहे थे?'

'अरे भाई! क्या बताऊ? कल हमारे यहा एक श्रीमती जी पधारीं थीं'—रविने उत्तर दिया। 'कौन थीं?' शिवने जानना चाहा तो रविने बताया—'वह एक रिश्तेदार होतीं ह, विलक्षण!' शिवको जिज्ञासा जगी, पूछा— कसे?' उत्तर दे कि पहले ही रवि हस पडा—बोला उनकी बात पर तो मुझे रह रहकर हसी आती है। सुना, वह कहती ह कि वस्तुका जो परिवतन होता है वह स्वत होता है—भावो और निमित्त का कुछ महत्व नहीं। भावों का अपना क्षत्र है। निमित्त नहीं कहते कि चलो या बठो। आत्मा न बठता है और न उठता!' शिव यह सुनकर आश्चय से बोला—'यह बड़ा विचित्र विचार है! उन्हे ऐसा भ्रम क्यों हुआ?'—'हुआ क्यों? निक्षेप और नयके स्वरूप को न समभकर निश्चय धम प्रधान ग्रंथों और उपदेशों को सुनकर वह बहक गइ ह। उन्हें लगता है कि दशन पूजन आदि बाह्य क्रियायें भी प्रयोजनभूत नहीं ह, क्योंकि धम आत्माके बाहर नहीं है!' शिवने कहा—'यह धारणा तो ठीक नहीं। माना कि धम आत्मा का स्वभाव है, परन्तु इस समय तो वह विकारी हो रहा है। अत

भीतर पहुंचकर किस प्रकार विद्युत प्रक्रियाकी नाली पर हमारी अन्तरात्मा (Psycho) में नये २ विचारों और भावनाओं को उत्पन्न करती है-यह सब उन्होंने प्रत्यक्ष बताया और सिद्ध किया कि लोक एक शाश्वत प्रवाह है, जिसमें मानव शरीर सना हुआ है और आत्मा उसके भीतर चमक रहा है।"* शिवने हर्ष प्रगट करते हुये कहा कि यह तो विज्ञान में क्रान्ति ला देगा।' 'निस्सन्देह!' रविने जोर से कहा और बताया-'काश इन प्रो० सा० को जैनसिद्धान्त के अणुवाद का परिज्ञान कराया जावे! किन्तु खेद है, जैनी इस प्रकार की मौलिक खोजों को आगे बढ़ाने में कोई भाग नहीं लेते।'

शिवने कहा-'यही तो अज्ञानता है। समाजका लाखों रुपया प्रतिवर्ष दिखावटी बातों में खर्च होता है, कदाचित उसका चतुर्थ अंश भी ऐसे शोध कार्यों में खर्च हो तो अपूर्व ज्ञान प्रभावना हो। उपरोक्त खोज से बाह्य निमित्तों का महत्व आन्तरिक भावों को जगाने में कितना कार्यकारी है, यह स्पष्ट है।'

रविने समर्थन में कहा-'यही तो बात है कि जैन तीर्थङ्करों ने द्रव्य क्षेत्र काल, भावका पारस्परिक प्रभाव जीवन में पड़ता बताया है।'

शिवने विदा लेते हुए कहा-'अच्छा भाई, अब आना दीजिये फिर मिलेंगे।' दोनों मित्र अपने २ घर गये।

---

* Prof Marco Todeschini explained with psycho mathematical arguments how the Universe consists of fluid inert spaces only the rotating movements of which represent the atomic astronomic system which appear to us as matter and their undulatory movements when they hit our sensory organs cause in our psyche feelings of force electricity light sound heat smell taste etc Considering actions and reactions between cosmic space and the human body which is immersed in it the scientist expounded the marvellous electronic technology of the nervous system

तत्व बोधके लिये वितर्क की महत्ता और शब्द प्रयोग।

शिव सोच रहा था ऐसा क्या कारण हुआ जो रवि कल न आया ? कहीं अस्वस्थ्य तो नहीं हो गया ? किन्तु जब उसने दृष्टि फेंकी तो गलीको मोड पर उसे रवि आता हुआ दिखाई दिया। वह मित्रको लेने आगे बढ गया। उसने उत्सुकता से पूछा 'भाई ! कल कहां रहे थे ?'

'अरे भाई ! क्या बताऊ ? कल हमारे यहा एक श्रीमती जी पधारीं थीं –रविने उत्तर दिया। कौन थीं ?' शिवने जानना चाहा तो रविने बताया— वह एक रिश्तेदार होतीं है विलक्षण!' शिवकी जिज्ञासा जगी, पूछा– कैसे ? उत्तर दे कि पहले ही रवि हस पडा–बोला उनकी बात पर तो मुझे रह रहकर हसी आती है। सुना, वह कहती है कि वस्तुका जो परिवर्तन होना है वह स्वत होता है—भावों और निमित्तों का कुछ महत्व नहीं। भावों का अपना क्षेत्र है। निमित्त नहीं कहते कि चलो या बैठो। आत्मा न बैठता है और न उठता !' शिव यह सुनकर आश्चर्य से बोला—'यह बडा विचित्र विचार है ! उन्हें ऐसा भ्रम क्यों हुआ ?'–'हुआ क्यों ? निक्षेप और नयके स्वरूप को न समझकर निश्चय धर्म प्रधान ग्रंथों और उपदेशों को सुनकर वह भ्रम गई है। उन्हें लगता है कि दर्शन पूजन आदि बाह्य क्रिया भी प्रयोजनभूत नहीं है, क्योंकि धर्म आत्माके बाहर होते है।' शिवने कहा—'यह धारणा तो ठीक नहीं। माना कि धर्म आत्मा का स्वभाव है, परन्तु इस समय तो वह विकार हो रहा है,

बाह्य क्रियाओं की साधना के द्वारा उस विकार को मिटाकर आत्मधर्म प्राप्त होता है, यह बात समीचीन है।'

'समीचीन तो है किन्तु उनकी समझमें यह नहीं आता, क्योंकि वह वस्तुकी सापेक्ष स्थितिको न देखकर केवल द्रव्यार्थिक (Realistic) दृष्टिके एकान्त में जा फंसी है।' रविने कहा। शिव बोला-- तो फिर तुमने उनको कैसे समझाया ?' रविने मुस्कराकर कहा-- समझाया क्या ? वह तो उनके लिये व्यर्थ था। फिर भी मैं उनके सामने एक तथ्यपूर्ण घटना रक्खी।' शिवने पूछा--'कौनसी घटना ?' रविने उत्तर में कहा--'अंतिम तीर्थङ्कर भ० महावीर के जीवन की घटना। आप जानते हैं कि भगवान यद्यपि केवल ज्ञानी हो गये थे, फिर भी उनकी वाणी नहीं खिरी थी।' हां हां, जबतक इन्द्रभूति गौतम समव शरण में नहीं आये तबतक भगवान् का उपदेश नहीं हुआ था।' शिवने भी रविकी बात बडी की। रविने बताया-- इस ऐति हासिक घटना को सुनकर वह चुप हुई और विचार भी कुछ बदले से। नोकर्म प्रत्यक्ष वस्तुका अस्तित्व और परिवर्तन साधन हो रहा है। उस साधनता में वस्तु अपने रूप को स्वाधीन बनाये रखती है--निश्चय द्रव्यार्थिक दृष्टि उसको स्पष्ट बताती है। इससे बाह्य निमित्त जन्य व्यवहार का अभाव नहीं होता। तभी तो भगवान की वाणी उस समयतक नहीं खिरी थी जब तक कि बाह्य में इन्द्रभूति गौतमका निमित्त नहीं मिला था।'

'बिल्कुल यही बात है, भाई! पर लोग वक्ताके दृष्टिकोण को न समझकर बहक जाते हैं'--शिवने कहा और वर्णीजी का भाषण सुनने के लिये दोनों मित्र चल दिये।

उसदिन वर्णीजी का भाषण शब्द और वितर्क की वनानिक शैली पर हो रहा था, जिसे दोनों मित्र मनोयोग पूर्वक सुनने लगे। भाषण में कहा जा रहा था कि एक बार भ० महावीर

से इन्द्रभूति गणधर ने पूछा—'भगवन् ! गुडमें कितने वर्ण, गंध रस व स्पर्श होते हैं ?' भगवान महावीर ने कहा—'इस प्रकार के प्रश्नोंका उत्तर दो मुख्य—दृष्टिकोणों से दिया जा सकता है। व्यवहार नयकी अपेक्षा से जिसे मानव जीवन अनुभव में लेता है—गुड मधुर सचिक्कन, सुगंधमय और पीला है, परन्तु वही निश्चय (Realistic) नयसे पुद्गलपिंड होनेके कारण ५ वर्ण ५ रस, २ गंध और ८ स्पर्श से युक्त है।' गौतम स्वामी ने आगे फिर पूछा—'प्रभो ! भ्रमर में कितने वर्ण हैं ?' उत्तर मिला—'व्यवहार (Practical) नयसे तो भ्रमर काला है अर्थात एक वर्ण वाला है, पर निश्चय (Realistic) नयसे उसमें श्वेत,कृष्ण, नील आदि पांचों वर्ण हैं।' इस प्रसंग से शब्दों के प्रयोग और तात्पर्य जानने की शैली का ठीक भान होता है। वस्तु अनन्त गुणात्मक है—उसमें एक नहीं अनेक गुण हैं। यह बिजली का तार लगा है पंखे में भी—बल्ब में भी और स्टोवमें भी। सबमें बिजली दौड रही है, परन्तु उसका व्यवहार भिन्न है, पंखे में उसकी चालक शक्ति काम कर रही है, बल्ब में प्रकाश चमक रहा है और स्टोवमें दाहकगुण काम कर रहा है। अतः एक रूप में वस्तुकी एक अपेक्षा ही सामने आती है। भौंरा काला दिखता है, पर निर्जीव होने पर उसका वही शरीर दूसरे दूसरे रंग का हो जाता है। अतः अपने शब्द व्यवहार में यदि मानव इस सत्य का ध्यान रखे तो परस्पर मतभेद और विरोध के लिये कोई अवसर ही उपस्थित न हो। शब्दों द्वारा ही मानव अपने विचारों को अभिव्यक्ति करता है। मानव के चमत्कृत स्व और परके लिये हितरूप समीचीन शब्द समूह वितर्क का रूप धारण करता है,जो सम्यक्त्वका बोधक है। आचार्य श्री ने यही कहा है, सुनिये—

'शब्दात्पद प्रसिद्धि पद सिद्धरथ निर्णयो भवति।
अर्थात्तत्वज्ञान तत्वज्ञानात्पर श्रेय ॥'

अर्थात्–'शब्द से पदकी सिद्धि होती है, पदको सिद्धि से उसके अर्थका निर्णय होता है, अर्थ निर्णयसे तत्वज्ञान अर्थात् हेयोपादेय विवेक की प्राप्ति होती है और तत्वज्ञान से परम कल्याण होता है।'

अत विचार के पश्चात शब्द यह मौलिक आधार है जो मानवीय उत्कर्षके लिये कार्यकारी है। शब्दावतार का क्रम भी वैज्ञानिक होता है। जैन शास्त्रकारों ने उसे (१) उपक्रम, (२) निक्षेप, (३) नय और (४) अनुगम रूप बताया है। जो शब्द के अर्थको अपने समीप करता है उसे उपक्रम कहते हैं। यह उप क्रम पांच प्रकार का है अर्थात् हम शब्द रूप पदों के प्रयोगों का अर्थ पांच प्रकार से समझ सकते हैं। पहले 'आनुपूर्वी' के क्रमसे अर्थात् पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यथा तथानुपूर्वी के भेद द्वारा पद समूह को समझा जा सकता है–वाक्योंके क्रमको समझने के लिये यह क्रम उपादेय है और उनको स्मृतिमें रखने के लिये भी यह क्रम उपयोगी है।

वह राम बैठा है। उससे पूछा–'बेटा! चौबीस तीर्थङ्करों के नाम बताओ?' वह झट से कह देता है—'ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म शान्ति, कुन्थु, अरह मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और महावीर।' यह पूर्वानुपूर्वी क्रम है–इससे तीर्थङ्करों के अस्तित्व की प्राचीनता का क्रम स्पष्ट होता है। सब प्राचीन और आदि तीर्थङ्कर ऋषभ देव हैं, जो इस कल्पकाल में जैनधर्म के संस्थापक कहे जा सकते हैं। हिन्दुओं ने भी उनको अपना आठवां अवतार माना है। अब यदि तीर्थङ्करों के नामों को उल्टा गिना जाय अर्थात् महा वीरजी से ऊपर की ओर तीर्थङ्करों का उल्लेख किया जावे तो यह क्रम 'पश्चादानुपूर्वी' अनुक्रम कहलायेगा। इस क्रमसे तीर्थ-

ङ्करों की निकटता का बोध होता है। तीर्थङ्कर महावीर ही सबसे अधिक हमारे निकट हैं तथा उपकारी हैं इस दृष्टि से जब हम उनका स्मरण पहले करते हैं और फिर क्रमशः उनके पूर्व हुये तीर्थङ्करों का स्मरण करते हैं तो हम 'पश्चादानुपूर्वी' शैली को अपनाते हैं। इनके अतिरिक्त यदा तदा हम जिस किसी भी तीर्थङ्कर का नाम आगे पीछे का क्रम बिना विनय से लेवें तो वह क्रम 'यथा तथानुपूर्वी' कहलायगा। इन शैलियों के अतिरिक्त और कोई आनुपूर्वी उपक्रम शब्द अर्थग्रहण का हेतु हो सकता है। लोग यह तथा पाठ पढ़ने पर बहुत दखते हैं, यह क्रम उसका समाधान करता है।

आनुपूर्वी के अतिरिक्त 'नाम उपक्रम' के द्वारा भी अर्थबोध होता है जो इस प्रकार का हो सकता है (१) गौणपद नाम में वस्तु के गुणों को मुख्य रखते हैं जैसे सूर्य को उसके तपन और भासनकी अपेक्षासे तपन और 'भास्कर' नामसे पुकारना, (२) नोगौणपद नाम में गुणोंका ध्यान नहीं रखा जाता–यह नाम अयथार्थ होता, जैसे नाम तो है लक्ष्मीचन्द और गांठ में नहीं एक पैसा, (३) आदानपद नाम में द्रव्य के निमित्त की अपेक्षा होती है–उसमें वस्तु का आदान आदेय भाव कार्यकारी होता है जैसे जलसे भरे हुए घट को 'पूर्णकलश' कहना, (४) प्रतिपक्षपद नाम में अन्य द्रव्यका अभाव कारणभूत होता, जैसे कुमारी वन्ध्या विधवा आदि (५) अनादि सिद्धान्तपद नाम में अनादिकाल से प्रवाह रूपमें चले आये सिद्धान्त वाचकपद अज्ञात पारिभाषिक शब्द (Technical Terms) लिये जाते हैं, जैसे धर्मास्तिकाय, जीव, कर्म आदि (६) प्रधानपद नाम में बहुत से पदार्थों के होने पर किसी एक पदार्थ की बहुलता आदि द्वारा प्राप्त हुई प्रधानता कारण होती है जैसे आम्रवन। इस वनमें यद्यपि अन्य वृक्ष भी हैं परन्तु प्रधानता आम्रवृक्षोंकी है,

इस कारण उसे 'प्राकृतन के नामसे पुकारते हैं। 'प्रधा पवद नाम' कहते, (७) नाम पर नाम आपा में स दाल जाते न मों का द्यातक है नामे गोड मान्ड द्रमिड प्रादि, प नाड प्रादि नाम गोडी श्रा ध्री द्रमिल प्रादि न द प्रा का प्रयगा है (८) गणना प्रयवा मापनी प्रर नाम जो नाम प्रचलित है उन्हें प्रमाण पद नाम कहते हैं जैसे सौ हजार दो, मारा पल तोला प्रादि। इन नामों से ह प्रमाण वस्तुका बोध होता है (९) नाम पद नाम दो प्रकार के होते हैं एक तो उपचितावयव र ५ शाादि के निमित्त से जिसे अवयवक यड़ जाने से बोले जाने वाले नाम, जैसे गण्ड लम्बकर्ण प्रादि और दूसरा अपचितावयवपद नाम प्रयान अवयवके छिन्न हो जाने से पड़ा हुआ नाम जैसे छिन कर्ण, छिन्ननासिक (नकटा) प्रादि और अन्तम (१०) सयोगपद नाम है जो चार प्रकार का है-द्रव्य सयोग क्षेत्र सयोग काल सयोग और भाव सयोग। इसमे अन्य पदार्थों के सयोग की प्रधानता रहती है। जसे दाडी छत्री गर्भिणी इत्यादि द्रव्य सयोग पद नाम है, प्रादि दण्ड छत्र गर्भ प्रादि द्र सयोग से ये नाम व्यवहार में आए है। माथुर प्रादोच्य दक्षिणी इत्यादि क्षेत्र सयोगपद नाम है। शारद, वासन्ती इत्यादि काल सयोगपद नाम है। क्रोधी लोभी इत्यादि नाम भाव सयोगपद है। नामो के इस उपक्रमको ध्यान में रखने से नामको लेकर झगड़ने का प्रसग ही उपस्थित न होगा। यह इसका उपयोगिता है।

अब प्रमाण उपक्रम का - रा समझिये_लोक व्यवहार में साख' का महत्व विशेष है। जिस मानव की साख बनी रहती है उसका कोई काम रुकता नहीं इसी प्रकार विचार और वितर्क के क्षेत्रमें प्रमाण की महत्ता है। यह प्रमाण' पाच प्रकार का होता है अर्थात (१) द्रव्य प्रमाण (२) क्षेत्र प्रमाण, (३) काल प्रमाण, (४) भाव प्रमाण, और (५) नय प्रमाण।

सन्यात असंख्यात और अनंत द्रव्य प्रमाण है जो वस्तु की गिनती और मिकदार quantity) पर निर्भर है। प्रदेश, रज्जू आदि क्षेत्रगत माप क्षेत्रप्रमाण है। एक मिनिट आदिकाल प्रमाण है। भाव प्रमाण में मति श्रुत अवधि मन पर्यय और केवल ज्ञान गर्भित ह। और नयप्रमाण नगम आदि रूप है।

भाव प्रमाण वस्तुस्वभाव का ठीक बोध कराने के लिये परमोपयोगी है। इसीलिय पाच प्रकार के ज्ञान को भाव प्रमाण कहा गया है। वह दो प्रकार का होता ह (१) प्रत्यक्ष Direct और (२) परोक्ष Indirect प्रत्यक्षज्ञान में वस्तु का साक्षात अनुभव होता है किन्तु परोक्ष प्रमाण इन्द्रियों के आधीन है- वह स्मृति, संज्ञा, निष्पत्ति (Inference) आदि से वस्तु को पहिचानता है। अथवा यूं कहिये कि आत्माका चतन्यभाव जिसे साक्षात करता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है और इसके विपरीत जो ज्ञान इन्द्रिया द्वारा होता है, वह सब परोक्ष है, क्योंकि इन्द्रिया स्वय वस्तु को नहीं जानतीं ह-इसलिये उनके निमित्त से जानी गई चीज में धोका भी हो सकता है, जैसे पित्तज्वर से पीडित व्यक्ति मीठी वस्तु को कड़वी बताता ह और प्लीहाविकार से ग्रस्त नेत्र दृष्टि सब वस्तुओं को पीला ही देखती है-जो ठीक नहीं है। इन्हीं कारणोंसे मति ज्ञानजन्य परिज्ञानको परोक्ष कहते ह। पूर्ण वस्तुस्वभाव के बोधक न होने से इसे 'सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष' अथवा 'आंशिक प्रत्यक्ष' प्रमाणके नामसे भी पुकारते ह। इसके विपरीत विशुद्ध आत्मानुभूति जन्य चेतन्यज्ञान 'पारमार्थिक प्रत्यक्ष' कहलाता है, जो अवधिज्ञान (clairvoyance) मन पर्ययज्ञान (Direct Mental Telepathy) और केवलज्ञान (Perfect Knowledge, i e Omniscience) रूप है। वास्तवममतिज्ञान (Sensual Knowledge) और श्रुतज्ञान (Scriptural Knowledge) परोक्षही ह, क्योंकि उनका आधारपर वस्तु है। मति

ज्ञान पाचप्रकार अर्थात (१) स्मति, (२) प्रतिभिज्ञान, मतिऔर दर्शन जन्य परिज्ञान, (३) तर्क (४) अनुमान और (५) श्रुत ज्ञान रूप है। इस प्रकार जब प्रमाण को सीधी सादे ढग पर–वस्तु स्वभाव के आधार पर मानकर परिज्ञान लिया जाता है तो विरोध के लिए कोई स्थान नहा रहता। उसपर भा प्रमाण के साथ साथ नय (one viewpoint) को भी ध्यान में रखना उचित ह क्योंकि नय वस्तु के एकदेश स्वरूप को स्पष्ट करती है। जरा आग चलकर इनका खुलासा करग।

यहां पर अब उपक्रमके नाय अङ्गों अर्थात वक्त यता और अर्थाधिकारको समझना अभीष्ट है। यह हमारे और आपके दनिक अनुभवकी बात है कि विशेष अवसर और व्यक्तिको लक्ष्यकरके विशेष रूपसे बात चीत करते ह। कदाचित एेसा न किया जाय तो अशिष्टता के साथ २ अनिष्टता भी पल्ले बध जाती है। दर्शन के अथवा राजनीति के क्षेत्र में वक्तव्यता और अर्थ का विशेष महत्व है। किस समय कैसा वक्तव्य दना चाहिए और कसा अर्थ लेना चाहिए यह दार्शनिकोंके साथही राजनीतिज्ञोंके लिए भी महत्वपूर्ण है। यदि इसका परिज्ञान न हो तो इष्टकी स्थापना करके महत्ता प्रगट करना कठिनहो जाता है। इसालिए भगवान महावीर न इन दोना का परिज्ञात वस्तुस्वभावको जाननके लिए आव यक बताया था। विचार और वितर्क क क्षत्र में इनकी महत्ता विशेष है।

एकबार जब भ० महावीर की धर्मदेशना विपुलाचल पर्वत पर हो रही थी तब उनके एक शिष्यने जिज्ञासा की कि प्रभो! लोक में चर्चा-वार्ता क न की अनेक शैलिया ह–प्रायः वादमच पर पड़ीं हुइ मुद्राओं अथवा पत्रोंको उठाकर विद्वज्जन प्रतिवक्षी क आह्वानको स्वीकार करत ह। यह कहां तक ठोक है?' उसने वीर वाणी में सुना कि 'वस्तु स्वभाव को जानन के लिए चर्चा

वार्ता करना उपादेय है, क्योंकि उसमें सत्य को जानने के लिए जिज्ञासा बलवती होती है। इसके विपरीत जो केवल अपनी विद्वता अथवा अपने मत का बडप्पन प्रगट करने की दुर्भावनासे दूसरों को येनकेनप्रकारेण निग्रह स्थान को पहुचाने का प्रयत्न करते है, वे सत्य से भटक जाते है और मानवता का हित न साध सकनेके कारण उपहासको प्राप्त होते है। अतएव सत्यके जिज्ञासुओको वस्तुस्थितिका परिज्ञान करनेक सद्भावसे अनेकान्त दृष्टिके द्वारा विचार करना उचित है-स्व, पर और उभय दृष्टियों से तुलनात्मक विचार करनेसे सत्य प्रगट होता है। अत जिनेन्द्र के मतानुसार वक्तव्यता के तीन रूप प्रगट होते है (१) स्व समय वक्तव्यता, (२) पर समय वक्तव्यता, (३) तदुभयवक्तव्यता। स्व समय वक्तव्यतामें स्व समय अर्थात अपने इष्ट मत का प्रतिपादन करके अनकान्तधमका परिज्ञान कराया जाता है। पर समय वक्तव्यतामें दूसरेके एकान्त मिथ्यात्वका निसन करके उनके दृष्टिकोण को नय प्रमाणसे अलोचित किया जाता है। इन दोनों वक्तव्यताओं का एक साथ निरूपण करके सत्यकी स्थापना की जाती है वह तदुभय वक्तव्यता कहलाती है। उदाहरण के रूप में जीवतत्व को लीजिए। स्वसमयानुसार उसका वक्तव्य नित्यानित्यात्मक होगा अर्थात जीव नित्यभी है और अनित्य भी। परसमयवक्तव्यतामें जीव सवथा नित्य अथवा अनित्य-क्षणभगुर बताया जाता है-यह एकान्त दृष्टि उपादेय नहीं है। इसलिए उभय वक्तव्यताओं का तुलनात्मक निरूपण करना आवश्यक ठहरता है। इस प्रकरणमें स्वसमयकी सार्थकताकी सिद्धि करते हुए वक्ता बताता है कि द्रव्यार्थिक दृष्टिकोण(Realistic view point)से जीव नित्य है-पर समय यदि इस दृष्टिसे जीवको नित्य माने तो ठीक है, वरना सवथा नित्य मानने पर जीव ससारी अवस्था में जीवन मरण की दशा को कसे प्राप्त होगा ? चूकि

जीव ससारी दशा में सतति के चक्र में नाना गतियों में भटकता है, इसलिए इस व्यवहारिक अथवा पर्यायार्थिक दृष्टि (Practical View point) से जीव अनित्य भी है। जन्म से जीव को जो बाह्यरूप मिला था वह नहीं रहा, इसलिए ही वह इस अपेक्षा कृत अनित्य है। उसको सर्वथा अनित्य नहीं कह सकते। यह उभय वक्तव्यता वस्तुके अनेकान्तात्मक रूप को स्थापित करके विरोधीमतोंका समन्वय कराती है। अतएव दार्शनिक सघर्ष का अन्त करने म सार्थक है।

लोक व्यवहार म पूजीवाद को लीजिए अथवा प्राची और पाश्चात्य सस्कृतियो को। स्वसमय पूजीवाद और प्राची सस्कृति को श्रेष्ठ बताता है। पर समय पूजीवाद को सारी विषमताकी जड घोषित करता है और पाश्चात्य सस्कृति को प्रश्रय देता है। इसप्रकार दोनो में मतभेद हो रहा है, जो लोक सघर्ष का कारण बन रहा है। कदाचित उभयवक्तव्यताके अनुसार इन दानो मतों पर विचार किया जावे तो सघर्ष के लिए कोई कारण शेष नहीं रहता।

उभयवक्तव्यता की दृष्टिसे हम उपरोक्त दोनों मतोंके गुण दोषों की आलोचना करक सत्यका पा सकते ह, जिससे बौद्धिक मतभद जो सघर्ष का एक कारण है, मिट सकता है। उभयमत अपने २ क्षेत्र में उपयोगी ह। पूजी न सर्वथा अच्छी ही है और न बुरी ही। अच्छी बुरी तो मानव की धारणा है। लोक व्यवहार तो बिना पूजी—बिना 'अर्थ' के चल ही नहीं सकता। इस लिए जो पूजी—वाद का सर्वथा विरोध करत ह उन्हें भी पूजी का सहारा लेना पडता है। जब व्यवहारिक लोक जीवन बिना अर्थ के चल नहीं सकता, तब भला उस सर्वथा बुरा कैसे कहा जाय ? इस प्रकार पूजी तो बुरी नहीं है, पर तु उसका लोभ बुरा है। इसीलिए जन एव अन्य भारतीय मतों ने 'अर्थ' को 'धर्म'

क्र आधीन कर लिया है। जैनाचार्यों ने अर्थ का संतुलन रखनेके लिए मानव जीवन को व्रतों की परिधि में बांध दिया है। गृहस्थ संयम पाले—आठ मूल गुणों को धारण करके अपनी वासनाओं पर अधिकार जमा ले—वह इंद्रियोंका दास बनकर अपनी आवश्यकताओं को बढ़ा न ले। पंच अणुव्रतों—स्थूल रूप में अहिंसा, सत्य शील, अचौर्य और परिग्रह परिमाणका पालन करे, जिससे 'अर्थ संग्रह' के पाप में न फंसे। इस प्रकार के व्यवहार से उसके भीतर स्व-पर हित साधने की पुण्यभावना जागृत रहती है। क्योंकि वह सब जीवों में अपनी जैसी आत्मा देखता है। अतः वह किसी कानून अथवा किसी अन्य बाहरी दबावके कारण नहीं, बल्कि स्वेच्छा से अपनी इच्छाओं को सीमित रखता और परिग्रहको पोटको बढ़ाता नहीं है, क्योंकि वह जानता है कि भोगोपभोग से पदार्थ सीमित हैं और इच्छायें असीम हैं। अतएव केवल बाह्य नियंत्रीकरण (Control) से आर्थिक विषमता मिटती नहीं। युद्धकालमें पदार्थों पर नियंत्रण (Control) लगाया गया परंतु उससे विषमता मिटी नहीं—चोर बाजारी बढ़ी। इस प्रथ स्थामें केवल पूंजीवादको मिटानेसे समस्या का हल नहीं होता। समस्या का हल मानव हृदय में त्याग और विवेक भाव जागृत करनेसे हो सकता है। अतएव उभयवक्तव्यता के अनुसार पूंजीवाद का ठीक समाधान होता है कि पूंजी कमाना बुरा नहीं, पर उसको धर्म के आधीन रखना आवश्यक है। पूंजी में आगमन होना उपादेय नहीं है। यह व्यवहार की बात हुई—निश्चय परमार्थ में पूंजी के लिए कोई स्थान नहीं है। संत के लिए धाना भी ठीकरा है।

यही बात प्राचीन और पश्चात्य संस्कृतियोंके लिए कही जा सकती है। उभयवक्तव्यता बताती है कि दोनों संस्कृतियां अ...

उन्नति के साथ भौतिक उन्नति भी अनिवार्य है। जनाचार्योंने इसीलिए कहा है कि भोग भोगना बुरा नहीं, उनमें आसक्त होना बुरा है। भौतिक विज्ञान लौकिक जीवन में सुविधायें देता है, परन्तु वह जीवन को आत्मा विहीन बना देता है, जिसके कारण मानव दानव बन जाता है। मानवताके लिए यह उपादेय नहीं। अत प्राचीन सस्कृति जो आध्यात्मिकताके आधीन भौतिक उन्नति को रखती है उपादेय है। उभयवक्तव्यता इस प्रकार बौद्धिक मतभेद को मिटा कर उभय सस्कृतियों का समन्वय कराती है। यही वक्तव्यता की उपयोगिता है।

अर्थाधिकार उपक्रम शब्द और पद के रहस्य को समझाने के लिए कार्यकारी है। वह प्रमाण, प्रमेय और तदुभय रूप से तीन प्रकार का है। प्रमाण का परिचय किया हो जा चुका है, और प्रमाण के विषयभूत तत्त्व प्रमेय होते ह। उनका अलग २ अथवा एक साथ विचार करना अर्थाधिकार का बोधक है।

इस प्रकार एक बात को ठीकसे समझनेके लिए उक्त प्रकार का उपक्रम करना होता है। मानव इस उपक्रम का ध्यान रखे तो सघष उत्पन्न हो नहीं हो सकता है। इसके आगे उसे निक्षेप नय और अनुगमका भी ध्यान रखना होता है। इन सभी बातों की प्रकपता से ही चमत्कृत शब्दों और पदों से युक्त वितक में प्रकपता आती है। अतएव आइए अब निक्षेपका भी वणन करें।

जब भ० महावीर से श्रेणिक महाराज ने पूछा कि निक्षेप क्या है ? तो इस प्रश्न के उत्तर मे हो निक्षप की व्याख्या वीर-वाणी में की गई ! श्रेणिक के साथ अगणित जीवों ने जाना कि जो किसी अनिर्णीत वस्तुका उसके नामादिक द्वारा निणय करावे उसे निक्षप कहते ह। वह नाम स्थापना, द्रव्य, क्षत्र, काल और भावके भेद से छ प्रकार का है। लोक व्यवहारका समीचीन चलन निक्षेप के आधार से चलता है। कदाचित किसी वस्तु के

विषयमें कोई एक निश्चय न हो तो व्यवहार बनही नहीं सकता। वह व्यवहार इन छह निक्षेपों के द्वारा ठीक निर्णय को पाकर माग चलता है और कोई विषमता खड़ी नहीं होती। मानव व्यवहार द्रव्य है-वह अन्तर और बाहरके निमित्ताधीन है। अन्तरङ्ग निमित्त का बोधक भाव निक्षेप है। अवशेष निक्षेप वस्तुके बाहरी सम्पर्कों पर आधारित है। द्रव्य, क्षेत्र और काल निक्षेप वस्तुके प्राकृत प्रवाह पर अवलम्बित है। इसलिए शाश्वत अर्थात् द्रव्यार्थिक (Realistic) है। भाव भी शाश्वत आत्मद्रव्य का परिणाम होनेके कारण शाश्वत है। यह इनका निश्चयात्मक रूप है, जो व्यवहाराधीन है। नाम और स्थापना भी सर्वथा कृत्रिम नहीं है। जीव का शाश्वत नाम तो 'आत्माराम' ही है। उस आत्माराम को किसी नाम से लोक व्यवहार में पुकार सकते है। और जब वह पुद्गलमें स्थापित होता है तब उस स्थापना अथवा शरीर की आकृति के अनुरूप उसका नाम पड़ जाता है। किन्तु आश्चर्य है कि जीव इन परिवर्तनशील नामों में मोह में अपने असली नाम को भूले हुये है, 'भरतराम' कह कर पुकारो तो कदाचित सोते से जगकर भी उत्तर दे देगा, परन्तु सतगुरु 'आत्माराम' कहकर लाखबार सम्बोधित करें तो भी वह नहीं सुनता है। यह मोह की महिमा और वस्तु स्वरूपको ठीक से न समझने का परिणाम है। 'निक्षेप' लोक व्यवहार में द्रव्यों की ठीक स्थिति का ज्ञान कराता है।

लोक व्यवहार में भी उसकी उपयोगिता महत्वपूर्ण है लोक के संघर्षको घटाने में निक्षेप ज्ञान कार्यकारी है। देखिए भारत वर्ष में रहने के कारण हमारा नामनिक्षेप भारतीय हुआ है। किन्तु नाम भारतीय होने के साथ ही हमें स्थापना भारतीय भी होना है, अर्थात हमारे व्यक्तित्व में भारतीयता की स्थापना होना चाहिए तभी हम सार्थक भारतीय होंगे। हमारी वेषभूषा,

हमारा आचार विचार, हमारा खान पान, हमारी भाषा-बोली और सस्कार भारतीय परम्परा के अनुरूप होना चाहिए । किंतु आज भारतीय सूटेड बूटेड होकर आचार विचार और खान पान में विदेशी गोरो की नकल कर रहे ह । उनकी बोली भी अग्रजी और सस्कार भी विदेशी हो रहे ह, जिसक कारण भारतीय जीवन में बनावट और खोखलापन आरहा है एव हिंसा बढ रही है । परिणामत सुख शान्ति मिट रही है । रोमांटिक जीवनकी धुन में सरपट भागते हुए भारतीय कहाँ जा गिरेंगे यह भविष्य बतायेगा, किन्तु एक बात सूय प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि ऐसे लोग न घर के रहते ह न घाट के । वे नाम के भारतीय भले रहें परन्तु विदेशियों की नक्ल करने पर भी वे गोरे साहिब अंग्रेज, अमेरिकन आदि कुछ भी नहीं हो पाते-उनकी प्रतिष्ठा धूल चाटती है । अतएव यदि निक्षेपों का परिज्ञान भारतीय पाठशालाओं में छात्रों को कराया जावे, तो वे इस भयकर भूल से बचकर भारतीयताको जीवित रख सकते ह । स्थापना निक्षप उनमें भारतीय सस्कृतिकी प्रभावक श्रद्धाको मूतमान बना देगा। ऐसा सच्चा भारतीय फिर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूपेणभी भारतीय हो सकेगा । भारतीय होने का अथ यह नहीं कि वह मानव नहीं रहा-द्रव्यरूप में उसकी बाह्याकृति उसे मानव बता रही है । अत भारतीय होकर भी उसे मानवताको नहीं भलाना है। सभी मानव उसकी दष्टि में समान ह सबके हित में उसका हित है । इस प्रकार द्रव्यनिक्षप एक भारतीय को यह बोध कराता है कि वह विश्व मानव है-उस विश्वमें मानवताका प्रकाश फलाना है । उसका क्षेत्र केवल भारत नहीं है । वह त्रिलोक में त्रिकालसे भ्रमता आया है । अत वह उनको भुला नहीं सकता। ऐसे अहिंसक मानवका भाव प्रधान बनते देर नहीं लगती, तब भाव मानव अर्थात ब्रह्मरूप जीवात्मा को पहिचान लेता है

भावनिक्षेप से उसे अपने असली स्वरूप का बोध होता है। इस प्रकार निक्षेप ज्ञान मानवता के विकास में विशेष उपयोगी है। जो बात भारतीयों पर घटित होती है वही बात किसी भी राष्ट्रिक पर फलित हो सकती है। अतः इस सिद्धांत का विश्व व्यापी प्रभाव और उपयोगिता है।

भावोंके उत्थान और पतनमें वाह्यनिमित्त कितने कार्यकारी है, यह पहले बताया जा चुका है। निक्षेपों की उपयोगिता भावों का परिशोध करने में है, क्योंकि भाव बिना-स्वसंवेदनज्ञान के बिना सभी जप तप व्यर्थ होते हैं। स्वामी समन्तभद्र जी कहते हैं कि जैसे बकरी के गले का स्तन निरर्थक है, वैसे ही भावहीन क्रिया है —

> भावहीनस्य पूजादि तपोदान जपादिकम्।
> व्यर्थ दाक्षादिवं च स्यादजाकण्ठ स्तनादिव॥

अतएव निक्षेपों में भाव निक्षेप विशेष उपयोगी है। मानव मनमें प्रतिक्षण नएनए भाव आते और जाते रहते हैं। उन भावोंके अनुरूप ही मानवका दृष्टिकोण बनता रहता है। किन्तु विषय भावजन्य दृष्टिकोण को ही सर्वाङ्गीन सत्य मान लेना बड़ी भूल है-वह एकान्त दृष्टि है जबकि वस्तु अनेक गुणात्मक है। वस्तु के सभी गुणोंका उल्लेख एक साथ नहीं किया जा सकता। एक समय में वस्तु के गुणविशेषका ही शब्दव्यवहार सम्भव है। अतः वस्तुका अथवा सत्यका आंशिक ज्ञान ही सम्भव है। जो विचार या दृष्टिकोण वस्तु का आंशिक ज्ञान कराता है उसे 'नय' कहा गया है। ये नय अनेक प्रकारके हो सकते हैं, क्योंकि विचार और दृष्टिकोण अनेक हैं। इनको ध्यानमें रखने से वस्तुतत्व का ठीक परिज्ञान होता है।

जो लोग एकान्त दृष्टि को पकड़ लेते हैं वे सत्य से दूर रह कर स्वयं कष्ट उठाते और दूसरों को कष्ट में डालते हैं-वे नय

श्रौर प्रमाण से वस्तु की सिद्धि नहीं करते । शब्दों के चक्कर में फस जाते हैं । उदाहरणके लिए एक दृष्टान्त सुनिए । एक भक्त हृदय सज्जन दुनियाके मतमता तरोंसे ऊब गए थे । उनकी समझ में नहीं आता था कि किस देवता को सच्चा मानें । इस उलझन में, सौभाग्य से उन्हें एक गुरु मिले । भक्त ने अपनी कठिनाई उनके समक्ष रक्खी । गुरु ने ढाढस बधाया और कहा- घबड़ाइए नहीं, श्रद्धाको जगाए रखिए,और समयवर्ती सत्यको पहिचानते चलिए ।' भक्त ने पूछा--'महाराज, श्रद्धा किसपर लाऊ-यहांतो हजारों देवी देवता हैं ।' गुरु ने कहा--'होने दो, तुम तो अपने मन के देवता को ढूढ लो !'--'कसे ढूढू ?' भक्त ने पूछा । गुरु ने कहा-'शक्ति के सहारे से ढूढ लो । जो शक्तिशाली जचे उसे ही अपना देवता मानते जाओ ।' भक्तने गुरु की बात गाठ बाध ली । उसने दृष्टि दौडाई तो एक सुन्दर पाषाण दृष्टि पड़ा । उसने सोचा कि 'यह पाषाण बड़ा शक्तिशाली है-मानवका माथा फोड़ दे यह ।' अत पाषाणकी पूजा करने लगा । एक दिन देखा पाषाण पर चूहा चढ़ा नवेद्य खा रहा है । उसका माथा ठनका और माना पाषाण से चूहा शक्तिशाली है । पाषाणसे मोह छोड़ा और चूहे को पूजना प्रारम्भ किया । कुछ दिन यह चला । फिर देखा कि चूहे को बिल्ली निगलने की फिराक में है । वह चूहेसे बलवान है । बस बिल्ली की पूजा प्रारंभ कर दी । कुछ दिनों तक यह पूजाभी चलती रही । एक दिन देखा कि उनकी श्रीमती जी झाडू से बिल्ली की मरम्मत कर रहीं हैं, क्योंकि उसने दूध पी लिया था । भक्त ने माना, बिल्ली से बहादुर उनकी श्रीमती जी हैं । अतएव उन्होंने अपनी श्रीमतीजीको उपास्य मान लिया । एक दिन पूजा करते हुए ध्यान में आखें खोलीं तो पाया, कि श्रीमती जी देवता के आसन पर नहीं हैं । उन्होंने पूछा--'कहा चलीं गई थीं ?' पत्नी ने झल्लाकर कहा--'जाऊं नहीं तो क्या

करू ? अभी पूजासे उठते ही नाश्ता मांगोगे-पहले से तैयारी न करू तो कहां से दू ?' यह सुनकर भक्तके सामनेसे परदा उठ गया उसने माना कि श्रीमती से विशेष शक्तिशाली तो वह है। अत वह स्वय अपना देव है-दुनियामें बाहर कहीं भी कोई देवता नहीं है। गुरुके वचन में श्रद्धा लाकर और एक बातको ही न पकडे रखकर भक्त ने सत्य को पा लिया। अत एकात और अध श्रद्धा सवदा त्याज्य है।

किंतु बुद्धिवादी पुरुष उक्त कथा पर श्रद्धा नहीं लायेंगे, बल्कि वे उसे दकियानूसी कहकर झगड पडेंगे। वे उसके शब्द रूप को ही देखते ह_उसके भाव को नहीं पहुचते। वास्तव में उक्त दष्टात अलकृतभाषा की सुदर रचना है-उसके प्रतीकों का रहस्य समझकर बुद्धिवादी भी उससे लाभ उठा सकता है। आइए उसके रहस्य को समझिए। मानव जन्मते ही अपने माता पिताका अनुकरण करता और उनकी बातों पर विश्वास लाता है। दादी की परियों वाली कहानी को वह सही मानता है। यह सामान्य श्रद्धा है-जड बुद्धि का खल। पाषाण जड बुद्धि का प्रतीक है। मानवमें पहले सामान्य श्रद्धा जगती है। वह सामान्य श्रद्धा अधश्रद्धाम नहीं पलटना चाहिए। बडे होने पर बचपनकी बातें मजाक सूझतीं ह, क्योंकि बुद्धि प्रकपित हो जाती है। यह अज्ञान की धज्जियां उडाती ह। जो विवेकी नहीं बनता, वह अधश्रद्धालु बनकर सत्य को नहीं पाता। अत अधश्रद्धालु न बनकर जिज्ञासु बनना उपादेय है। ऐसा जिज्ञासु अध्ययनशील होता है और तक प्रधान। वह तक की कसौटी पर प्रत्येक मत को कसता है और वज्ञानिक वि लेषण काट छांट करता है। चूहेकी प्रवति काटछाट करनेकी है-इसीलिए वह तकका प्रतीक है। मयक को गणेश जी का वाहन इसी तक प्रधानता को व्यक्त करने के लिए कहा गया है। गणश कहिए गणधर

श्रोर वही आगम ग्रथो को रचते ह । जब जिज्ञासु चूहे की वृत्ति को अपनाकर–उसकी उपासना करके तक प्रधानता के सहारे से वस्तुस्वरूप को पहिचान लेता है तो वह अनान अधकार में भी सत्य के दशन पा लेता है । बिल्लीकी रासपति यही है कि वह अधेरे में भी देखती है । 'तमसो मा ज्योतिगमय' सूत्र का वह मूतमान रूप बनता है । सदज्ञानसे विवेक जागता है, जो जिज्ञासु के हृदय में सब जीवो के प्रति समता भाव जागत करता है—अहिंसा उसके रोमरोम से टपकती है–वह मातत्वभाव का उपासक होता है । इस प्रकार सभी सत्व भूत में समता श्रौर विश्व प्रेम को फलाकर वह अपने पनको पाता है श्रौर स्वय परमात्मा बन जाता है । यह है उक्त दप्टा तका सद्धा तिक ग्रथ । इस ग्रथ को समझकर ही मानव स्व श्रौर परका कल्याण करने में सफल होता है । अत उक्त दप्टा त के शब्द चक्र में ही न उलझे रह कर अथ गहण करना ही बुद्धिमत्ता है । जन सिद्धात की यही विशेपता है कि वह सत्य के ठीक ठीक दशन सवत्र कराता है । अत शब्द के सहारे से ग्रथ को प्राप्त करना ही विचक्षण का कतव्य है । उसी से वह सिद्धि का अनुभव करेगा । एक को पकडकर अनेक म भी वह एक को पा लेता है ।"

वर्णी जी के भाषण को सुनकर दोनो मित्र बहुत ही प्रसन्न हुए श्रौर चर्चा करते हुए अपने २ घरो को गए ।

(४)

स्याद्वाद-सिद्धांत की उपयोगिता।

अभी शिव अपनी बठक में आ भी नहीं पाया था कि उसे रविके आनेकी आहट सुनाई दी। रवि गुनगुना रहा था– अन्तर उज्ज्वल करना रे भाई!' उसकी स्वरलहरी सुनकर शिव बाहर आया और बोला–'आज तो आप बहुत ही प्रसन्न मुद्रा म है। क्या गा रहे हो?' रवि ने कहा– 'मुझे कवि भूधर का यह पद बहुत प्रिय है–उसीको बोल रहा था। वह अन्तर शोधनका भाव जागत करता है। सुनो कसी मार्मिक चुटकी है 'जप तप तीरथ यज्ञ-व्रतादिक आगम अर्थ उचरना रे। कामादिक कीच बिन धोए यू ही पचपच मरना रे॥'

शिव बोला–'निस्सन्देह बात सच्ची है। श्रद्धा और ज्ञानका फल सदाचरण होना ही चाहिए, जो अन्तरङ्ग की शुद्धि से ही सभव है। चलो अबतो वर्णी जी के प्रवचन में चलना है।'

हां हा भाई चलो। यह तो म भूल ही गया था'–रवि ने कहा और वह शिव के साथ वर्णी प्रवचन सुननेको चला गया।

सभाभवन खचाखच भरा हुआ था। प्रवचनमें उन्होंने सुना कि आजकल लोक में द्वेष बढ़ रहा है। घर कुटुम्बसे लेकर बड़े बड़े राष्ट्र द्वेषकी अग्निमें जल रहे ह। बुद्धिक धनी लोग अपने साथियों को नए नए वादों का इन्द्रधनुष दिखाकर प्रसन्न कर रहे ह। भौतिकवादी विज्ञानवेत्ता अणुशक्ति का उपयोग करके चन्द्रलोक को जीतना चाहते ह। इस प्रकार राष्ट्रों में एक होड लगी हुई है कि पाशविक बल और भौतिक विज्ञान की शक्तिमें कौन बाजी ले जाए? इसीलिए वे एक दूसरे को शङ्का की दृष्टि

और वही आगम ग्रंथों को रचते ह । जब जिज्ञासु चूहे की वृत्ति को अपनाकर–उसकी उपासना करके तक प्रधानता के सहारे से वस्तुस्वरूप को पहिचान लेता है तो वह अज्ञान अंधकार में भी सत्य के दर्शन पा लेता है । बिल्लीकी खासियत यही है कि वह अंधेरे में भी देखती है । तमसो मा ज्योतिर्गमय' सूत्र का वह मूर्तमान रूप बनता है । सद्ज्ञानसे विवेक जागता है, जो जिज्ञासु के हृदय म सब जीवों के प्रति समता भाव जागृत करता है— अहिंसा उसके रोमरोम से टपकती है–वह मातृत्वभाव का उपासक होता है । इस प्रकार सभी सत्व भूत में समता और विश्व प्रेम को फैलाकर वह अपने पनको पाता है और स्वयं परमात्मा बन जाता है । यह है उक्त दृष्टान्तका सद्धांतिक अर्थ । इस अर्थ को समझकर ही मानव स्व और परका कल्याण करने में सफल होता है । अत उक्त दृष्टा त के शब्द चक्र म ही न उलझे रह कर अर्थ गृहण करना ही बुद्धिमत्ता है । जन सिद्धांत की यही विशेषता है कि वह सत्य के ठीक ठीक दर्शन सर्वत्र कराता है । अत शब्द के सहारे से अर्थ को प्राप्त करना ही विचक्षण का कर्तव्य है । उसी से वह सिद्धि का अनुभव करेगा । एक को पकडकर अनेक म भी वह एक को पा लेता है ।"

वर्णी जी के भाषण को सुनकर दोनों मित्र बहुत ही प्रसन्न हुए और चर्चा करते हुए अपने २ घरों को गए ।

(४)

स्याद्वाद-सिद्धांत की उपयोगिता।

अभी शिव अपनी बैठक में आ भी नहीं पाया था कि उसे रविके आनेकी आहट सुनाई दी। रवि गुनगुना रहा था– अंतर उज्ज्वल करना रे भाई!' उसकी स्वरलहरी सुनकर शिव बाहर आया और बोला–'आज तो आप बहुत ही प्रसन्न मुद्रा में हैं। क्या गा रहे हो?' रवि ने कहा– 'मुझे कवि भूधर का यह पद बहुत प्रिय है–उसीको बोल रहा था। वह अंतर शोधनका भाव जागृत करता है। सुनो कैसी मार्मिक चुटकी है 'जप तप तीरथ यज्ञ-व्रतादिक आगम अर्थ उचरना रे। कामादिक कीच बिन धोए यूं ही पचपच मरना रे॥'

शिव बोला–'निस्सन्देह बात सच्ची है। श्रद्धा और ज्ञानका फल सदाचरण होना ही चाहिए, जो अंतरङ्ग की शुद्धि से ही संभव है। चलो अबतो वर्णी जी के प्रवचन में चलना है।'

'हां हां भाई चलो। यह तो मैं भूल ही गया था'–रवि ने कहा और वह शिव के साथ वर्णी प्रवचन सुननेको चला गया।

सभाभवन खचाखच भरा हुआ था। प्रवचनमें उन्होंने सुना कि आजकल लोक में द्वेष बढ़ रहा है। घर कुटुम्बसे लेकर बड़े बड़े राष्ट्र द्वेषकी अग्निमें जल रहे हैं। बुद्धिके धनी लोग अपने साथियों को नए नए बातों का इन्द्रधनुष दिखाकर प्रसन्न कर रहे हैं। भौतिकवादी विज्ञानवेत्ता अणुशक्ति का उपयोग करके चन्द्रलोक को जीतना चाहते हैं। इस प्रकार राष्ट्रों में एक होड़ लगी हुई है कि पाशविक बल और भौतिक विज्ञान की शक्तिमें कौन बाजी ले जाए? इसीलिए वे एक दूसरे को शङ्का की दृष्टि

से देखते हैं-भय और विरोध में बहते चले जाते हैं और अपने पक्ष को प्रबल करने के लिए निर्बल देशों को प्रलोभन देते और अपने गुट में मिलाते हैं। किन्तु क्या इस प्रकार की प्रवृत्ति से लोक में सुख और शांति बढ़ी है? क्या लोक में अपराधों की संख्या घटी है? आप सभी कहेंगे-"नहीं!" तो भाई हमें इस मूल की भूल को मिटाना होगा। यह मानी हुई बात है कि मनुष्य की प्रवृत्ति अंतर की श्रेणी है। मानव मन से जैसा सोचता और विचारता है, वैसी ही वाणी बोलता और वैसा ही आचरण करता है। विचार और वितर्क की अमोघ शक्ति का परिचय पहले भी कराया जा चुका है। निस्सन्देह जबतक अंतर उज्ज्वल नहीं होगा मन की शुद्धि नहीं होगी तबतक मानवीय व्यवहार सर्वोदय परक हो ही नहीं सकता। भौतिकवादी मानव अपना ऐहिक स्वार्थ साधना ही जीवन का ध्येय मानता है-इस स्वार्थ में वह अपने पड़ोसी को भी भूल जाता है और पशुओं के जीवन का कोई मूल्य उसकी दृष्टि में नहीं है। वह बुद्धिवादी बनकर सबकी आंखों में धूल झोंककर आगे बढ़ना चाहता है-बहुत हुआ तो राष्ट्रीयता में बहकर मानवता का भी खून करता है। इस तरह नितनया संघर्ष और विद्रोह बढ़ता है। अग्नि से अग्नि जिसप्रकार नहीं बुझाई जा सकती, उसी प्रकार संघर्ष संघर्ष से नहीं-युद्ध युद्ध से नहीं मिट सकता। लोक सुख और शांति चाहता है। परन्तु उसे बाहर ढूंढने में अपने भीतर एक तूफान खड़ा कर लेता है। जब मानव के अंतर में संघर्ष है तो बाहर भी वह संघर्ष सिरजता है। अतः हिंसा का अन्त हिंसक बनकर नहीं किया जा सकता। उसका अन्त करने के लिए हमें मन से हिंसा को दूर करना होगा। और मन में हिंसा का जन्म एकान्त दृष्टि से होता है। ऐसा मानव अपनी बात को ही सर्वोपरि मानता है और मनभेद सिरजता है। उसकी नीयत भी खराब हो जाती है।

और वह अपने लाभके लिए दूसरोंको कष्ट पहुचाना बुरा नहीं मानता। एक दृष्टात सुनिए।

एक बुद्धिवादी विद्वान थे। उन्होंने जाना कि लोक परिवर्तन शील है और माना कि यहा क्षण भगुरताका राज्य है। क्षण क्षण में सबकुछ बदलता रहता है। एक दिन चरवाहे ने आकर उनसे गाय चराने के पसे मांगे। क्षणिकवादकी धुनमें वह बोले "अरे भाई, न तो तू वह है जो गाय चराने ले गया और न म वह रहा जिसकी गाय है–दोनो बदल गए। अब कौन किसे पसा दे ?" चरवाहा की समझ में साफ न आया। वह दुखी होकर अपने पडोसी जन-बधु के पास पहुचा। उन्होंने उसे ढाढस बधाया और ठीक उपाय बता दिया। दूसरे दिन चरवाहा गाय चराने ले आया, परन्तु वापस पहुचाने न गया। क्षणिकवादी सज्जन उसके द्वार पर पहुचे और गायकी पूछ ताछ करने लगे। चरवाहा तो अब सिखा पढ़ा था ही–बोला– महाराज ! आपही ने तो कल बताया है कि गाय देनेवाला, लेनेवाला तथा गाय–सभी तो बदल जाते ह। अब सोचिए पुरानी गाय कहाँ से मिले वह तो बदल गई !" यह सुनकर क्षणिकवादी जी चक्कर में पडे और इस व्यवहारिक सघर्ष में उन्हे अपने एकान्तवाद की गलती सूझ गई और वह बोले–' भाई गाय सवथा तो नहीं बदली है–वह मूल में तो वही है जो कल थी कुछ थोडा सा परिवर्तन अवश्य हुआ है। यह लो अपनी चराई के पसे !" दोनों में मेल हो गया। अतः एकान्त का पक्षपात ही जीवनमें सघर्ष को जन्म देता है और अनेकांत की विशाल दृष्टि उसे मिटाती और मेल उत्पन्न करती है।

किन्तु आज के शक्तिशाली राष्ट्र न्याय सगत बात को माननेके लिए भी जल्दी तयार नहीं होते, बल्कि अपने पाशविक

लाते ह। ऐसी परिस्थितिमें उनकी बुद्धिका सतुलन होना आव श्यक है, जिसके लिए स्याद्वाद सिद्धात एक अमोघ औषधि है। सतुलित बुद्धि ही समन्वय दृष्टि पाती है और तब अहिंसा का ठीक प्रयोग हो सकता है, क्योंकि अहिंसाका क्षेत्र अनत है–वह स्वय ब्रह्मरूप है। उस अहिंसामय ब्रह्मका विकास जीव मात्रकी दया पालन में होता है। अतएव सतुलित बुद्धि ही मनम समता जागृत करती है और तब भगवती अहिंसा की समरसी धारा वह निकलती है, जिसका फल सुख और शाति है।

निस्सदेह जबतक मानव बुद्धि मतभेदके चक्करमें फसी रहेगी तबतक लोक में एकता और प्रेम का होना असभव ही है। और आज का सघर्ष विविध वादो का ही कड़वा फल है। कोई पूजी वादी है तो कोई साम्यवादी अथवा समाजवादी। फिर आजका लोक पूर्व और पश्चिम अथवा काले–गोरे के भेद में भी फसा हुआ है, क्योंकि उसकी बुद्धि सतुलित नहीं है–उसको सम्यग दृष्टि नहीं मिली है–वह वस्तु स्वरूप को समझने में असमर्थ है। अत उसे मतभेद के चक्करसे छूटनके लिए विचार और वितर्क के आधार से अनेकान्त धर्म का पाठ पढ़ना नितान्त आवश्यक है जिसकी विवेचना पहले भी की जा चुकी है। उसी अनेकात धर्मका व्यवहारिक चमत्कार स्याद्वाद सिद्धातमें देखनेको मिलता है। इसीलिए अमेरिकाके प्रो० आर्ची० जे० ब्रह्मने कहा था कि विश्वशान्ति की स्थापना के लिए जनों को अहिंसा की अपेक्षा स्याद्वाद सिद्धांत का अत्यधिक प्रचार करना चाहिए। और यह उन्होंने ठीक–ही कहा, क्योंकि डा० हर्मन जकोबी ने स्याद्वाद का मथन करके बताया है कि स्याद्वाद से सब सत्य विचारोंका द्वार खुल आता है।' जब सत्य का द्वार खुल गया तब समाधान होना अनिवार्य है इसीलिए गाधी जी को यह अनेकांत बड़ा प्रिय था।

अब आपको यह जानने की उत्कण्ठा होना स्वाभाविक है कि यह स्याद्वाद सिद्धात है क्या ? उसे हम अनेकान्तका प्रकाशक दीपस्तम कहें तो अनुचित न होगा, क्योंकि वह सत्यासत्य का निर्णायक है। वह 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग [illegible] है। एक शिक्षक बोर्डपर छ इच की एक लकीर [illegible] छात्रों से पूछता है कि यह लकीर बडी है या छोटी ? [illegible] चक्कर में पड जाते ह। कोई उसे छोटी कहता है [illegible] बडी ! किंतु अकेली लकीर का ठीक विधान [illegible] ? [illegible] भ्राति में डालकर एकातवादी बना देंगे। [illegible] स्याद्वाद सिद्धाततो उसमें बडापन और छोटापन [illegible] है, जो साधारणत उसके रूपमें छुपा हुआ है। [illegible] लकीर के ऊपर सात इच की लकीर [illegible] छोटापन स्पष्टहो जायगा और [illegible] छोटी है, परन्तु सर्वथा छोटी नहीं है। [illegible] है। कदाचित उसी के नीचे पाच इच का [illegible] लकीर खींच दीजिए, तो वही लकीर बडी कही [illegible] उस लकीरमें बडापन और छोटापन [illegible] है और [illegible] दने के लिए अवसर नहीं रहता-इस [illegible] (Theory of Relativity) को हम स्याद्वाद कह [illegible]। इस सिद्धांत में वस्तुके पूर्ण स्वरूप को विविध अपेक्षाओं द्वारा विचार कोटिमें लिया जाता है। अत यह आशिक [illegible] (Fraction) को मिटाने में कार्यकारी है। [illegible] भ० महावीर ने स्याद्वाद सिद्धात से विचार करन का [illegible] दिया था। जन [illegible] में लिखा है —

'एय ते निर्वेक्खे नो [illegible] नावा [illegible]',
त तहा वा अनेय आ [illegible] मिया [illegible]
'यदि व्यक्ति द्रव्य के अनेक [illegible] का मुलाकर

एक गुण को पकड़कर उसी में अटक जाता है तो वह कभी भी सत्य को नहीं पाता है । अत अनेकान्त शैली को अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है जैसे कि 'स्याद' प्रत्यय से यह व्यक्त होता है ।'

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि 'स्याद्वाद' सत्य क दर्शन ठीक ठीक कराता ह । इस शब्द म दो भाग (१) स्यात् और (२) वाद ह । स्यात् का अर्थ है 'कथंचित'— किसी एक दृष्टि विशेष से-यह संशयात्मक नहीं है । बल्कि यह दृढ़ता से इस बात को बताता है कि वस्तु में अनेक गुण ह, किन्तु उनका विधान एक साथ नहीं हो सकता । अत एक समयमें उसका एक विशेष विधान किया जा सकता है और वह कथंचित् अर्थात अपेक्षाकृत होगा । इसीलिए उसे ही पूर्ण सत्य मानने की गलती नही करना उचित है । वस्तु में अनेक गुणों की सत्ता युगपत अवश्य है किन्तु वचनमें युगपत कथन करनेकी क्षमता नहीं है । इसीलिए वस्तु का कथन अपेक्षाकृत ही हो सकता है । 'वाद' कथन शैली का द्योतक है । यह कथंचित कथनशैली निस्संदेह एकान्त पक्ष के दुर्मोह से मानव को मुक्त करके उसकी बुद्धिको विशाल और उदार बना देती है और वह कूपमण्डूकवत प्रवृति करना भूल जाता है । उसे ठीक वस्तु स्वरूपका भान इसके द्वारा हो जाता है । अतएव यदि मानव अपने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय जीवन में इस दृष्टि को अपना ले तो संघर्ष को मिटा दे और शान्ति को सिरज दे ।

सच पूछा जाय तो एकान्तपक्षको ग्रहण करके मानव अंध-श्रद्धालु बन जाता है और संकुचित मनोवृत्ति के कारण झगडने लगता है । जैन शास्त्रोंमें एक दृष्टान्त द्वारा इस तथ्यको ठीक ही स्पष्ट किया गया है । दृष्टान्त में बताया है कि कतिपय अंधे मानव किसी दिन एक हाथी को देखने लगे । किसी उसका

पर पकड़ा तो वह उसे स्यम सदश बताने लगा। दूसरेने उसका कान टटोला तो उसे सूप के समान कहने लगा। तीसरे ने हाथी के पेट पर हाथ फेरा तो वह उस ढोल जसा मानने लगा। और सब ही अपन २ मत को सच्चा मानकर झगड़ने लगे–किसी को समझ में यह बात आ ही न रही थी कि उनमेंसे प्रत्येक ने हाथी के शरीर का एक एक अवयव देखा है। इतनेमें उनके पास नेत्रो वाला सूझ-बूझ का मानव पहुचा और उसने उनकी भूल को बताकर सावधान किया। आज के सघप युग में स्याद्वादी ही वह सूझ-बूझ का मानव हो सकता है जो सत्य और अहिंसा के बल पर सबमें मेल मिलाप उत्पन्न करा सकता है। अत स्याद्वादी बननेके लिए आइए स्याद्वादके सप्त-भङ्ग पर विचार कीजिए। स्याद्वाद के सप्त भङ्ग निम्नलिखित ह —

(१) स्याद्-अस्ति–किसी दृष्टि विशेष से वस्तु है। (सकारात्मक कथन शली)

(२) स्याद्-नास्ति–किसी दृष्टि विशेष से वस्तु नहीं है। (नकारात्मक कथन शली)

(३) स्याद्-अस्ति-नास्ति–किसी दृष्टि विशेष से वस्तु है भी और नहीं भी है। (समन्वय परक)

(४) स्याद अवक्तव्य–किसी दृष्टि विशेष से वस्तु अनिवचनीय है। (अर्थात किसी दृष्टि विशेष के विना वस्तु का विवेचन हो नहीं सकता) (वस्तु स्वरूप द्योतक)

(५) स्याद्-अस्ति-अवक्तव्य–किसी दृष्टि विशेष से वस्तु है तो परन्तु अवक्तव्य है। (कथन में उसकी व्यक्तताका अभाव उस के अभाव का सूचक नहीं है-यह भङ्ग एकान्त अवक्तव्यता के दोष को मिटाता है)

(६) स्याद्-नास्ति-अवक्तव्य-किसी दष्टि विशेषकी अपेक्षा वस्तु नहीं है और अवक्तव्यभी है। (कथन में एक वस्तु पर वस्तुसे भिन्न होते हुए भी यह अवक्तव्य है इससे कथंचित् भिन्नता का मौलिक स्पष्टीकरण अभीष्ट है।)

(७) स्याद अस्ति नास्ति अवक्तव्य-किसी अपेक्षा से वस्तु है और किसी अपेक्षा से नहीं भी है एव अवक्तव्य है। (कथनमें वस्तुके अस्तित्व को पर वस्तुसे भिन्न कहने और अवक्तव्य बताने का अर्थ यह नहीं कि वस्तु स्वरूप कुछ नहीं है)

इस प्रकार आप देखते ह कि इस स्याद्वाद सिद्धान्तमें वस्तु की विवेचना अपेक्षा कृत की गई है, क्योंकि वस्तुका सर्वाङ्गीन विवेचन एक समय म एक स्वर से करना असंभव है। साथ ही लोकव्यवहार भी सापेक्षता पर निभर है मानव जीवन पर की अपेक्षा अथवा सहयोग के बिना चलता ही नहीं। अत स्याद्वाद सिद्धांत हमें उस विशाल समाजवाद की ओर ले जाता है जो अपन २ राष्ट्रके मानवा तक सामित नहीं है, बल्कि जीव मात्र उसका क्षेत्र है। स्याद्वादी का समता भाव अन्तर और बाह्य जगतमें एक समान होता है। अत वह एक प्राकृतिक समाजवाद को सिरजता है। चाहे दार्शनिक क्षेत्र हो और चाहे व्यवहारिक स्याद्वाद सिद्धात सवत्र समन्वय और समता को सिरजता है। उसका स्थान हृदय है और विवेक है उसका चालक!

विवेक के द्वारा मानव समीचीन दष्टिकोण को पाता है। स्याद्वाद सिद्धात उस समीचीन दष्टिकोण को निर्भ्रान्त रूप देता है क्योंकि यह वस्तु के सवगुणों की सत्ता को एक क्षण के लिए बुद्धि से दूर नहीं करता—यद्यपि यह एक समय में एक ही

सक्ता। इन भौतिक शरीर से भिन्न आत्मा है जसे कि पहले भङ्ग में बताया है। चूकि यह शरीर बंधनमें है, इस दृष्टिसे उसे जन्मना और मरना पडता है। इस व्यवहार में यह कथंचित अनित्य है। अब जो दार्शनिक आत्मा को सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य अथवा क्षण भगुर मानते ह, उनका समाधान स्याद्वाद सिद्धान्त से हो जाता है। तीसरा 'स्याद् अस्ति नास्ति' भग समन्वय परक है। आत्मा है भी और नहीं भी है-नित्य भी है और अनित्य भी है। स्वगुण चेतना की अपेक्षा है अचेतन की अपेक्षा नहा है क्योंकि यह जड नहीं है। वह द्रव्य है, उसमें गुण और पर्याय ह। अत स्वगुण अपेक्षा यह नित्य है। परन्तु कम बधके कारण वह शरीर न य पर्याय धारण करता है, इसलिए कथंचित अनित्य भी है। म० बुद्ध को प्राय अनात्मवादी और क्षण भगुरता का प्रतिपादक कहा जाता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं जानता कि उन्होने आत्मा के अस्तित्व से सर्वथा इनकार किया था-उनका अनात्मवाद स्याद-नास्ति की शली का था-जड जगत म आत्मा नहीं है यही बताना उनको अभीष्ठ था। यदि ऐसा न माना जावे तो उन्होंने कई प्रसगों में आत्मा को महानताका प्रतिपादन जो किया है वह निरथक होता है। विनय पिटक (१।२३) से स्पष्ट है कि एक बार जब म० गौतम बुद्धि बनारससे उरवेला जा रहे थे तो मार्गमें उनको एक युवक मिला जो अपनी प्रेमिका को ढूढ रहा था। उसन म० बुद्ध से पूछा कि 'उन्होने कहीं उसकी प्रेमिका तो नहीं देखी?' म० बुद्ध को उस पर दया आ गई-वह बोले- अरे मूढ! स्त्री क ढढने म क्यों पागल हो रहा है। यदि तू आत्मा को ढढता तो क्या अच्छा होता? (अत्तान गवेसेयया) 'धम्मपद' में भी आत्मा की महिमा गाई गई है।

किन्तु म० बुद्ध ने बन्य जगत में क्षणवर्ती परिवर्तनशीलता

मानवता में रंग में रंगा जा सकता है।

अब इस पूर्व और पश्चिम की बड़ी सी खाई को पाटने के लिए स्याद्वादका सप्तभंग कैसे कार्यकारी है ? यह देखिए। प्रकृति रूपेण लोक एक है और इसीलिए 'वसुधैवकुटुम्बकं' का आदर्श सर्वोपरि है। स्याद अस्ति भंग हमें लोककी एकताका पाठ पढ़ाता है, किन्तु स्याद नास्ति रूपमें विचारने पर यह एकता पूर्व और पश्चिम के भेद से नहीं सी भासती है। पूर्व और पश्चिम की तुलना कीजिए तो मानवोंके रहन सहन बोलचाल आदिमें अन्तर मिलता है। इसलिए वह कथंचित भिन्न है। किन्तु वह लोक से परे नहीं है और उसमें वही एक सी मानवता है। चाहे पूर्वका काला हो और चाहे पश्चिम का गोरा दोनों की मानव अनुभूतियां एक समान हैं। इस अपेक्षा से तृतीय स्याद अस्ति नास्ति उनका समन्वय कराने में कार्यकारी है। गत महायुद्धों में हमने देखा कि काले और गोरे साथ२ युद्धके मोर्चे पर लड़ते थे। शत्रु के गोले यह भेद नहीं देखते थे कि कालेको आहत करें और गोरे को बचा दें। पश्चिम और पूर्व का यह मेल आज का नहीं बहुत पुराना है-इतिहास इसका साक्षी है। अब कदाचित हम चौथे 'स्यात् अवक्तव्य' भंगकी दृष्टिसे विचार करें तो पूर्व और पश्चिम का भेद चारो खाने चित्त गिर पड़ता है, क्योंकि पूर्व और पश्चिम की सीमा निर्धारित करना कठिन है। वह एक तरह से अवक्तव्य ही है, क्योंकि पूर्व पश्चिम में समा जाता है और पश्चिम पूर्व में। जिस सीमाबिन्दु पर खड़े होकर हम पूर्व पश्चिमकी घोषणा करते हैं उस सीमाबिन्दु को पीछे छोड़कर जब हम आगे बढ़ जाते हैं तब जिसे हम पश्चिम कह रहे थे वह पूर्व हो जाता है। पूर्व पश्चिम की सीमा अवक्तव्य ही ठहरती है। यही हाल और पश्चिम की संस्कृतियों का है। पूर्व अध्यात्म प्रधान है [illegible] परन्तु दोनों सर्वथा ऐसे नहीं हैं। इस

लिए दोनों ही संस्कृतियोंका समन्वय हो सकता है और व्यवहार में वह हो भी रहा है। अध्यात्मवाद और भौतिकवाद—दोनोंही जीवन के तथ्य हैं। दोनों ही अपने २ क्षेत्रमें उपयोगी हैं। किंतु मानवके लिए अपनी चीज अध्यात्मवादमें मिलती है, भौतिकवाद उसके लिए पराया है। इस तथ्यको पहिचान कर यदि जीवन व्यवहार चलाया जाय तो चाहे पूर्व अथवा पश्चिम दोनों की ही संस्कृति एक हो दिखेगी। पांचवें भङ्ग द्वारा दोनों संस्कृतियों का अस्तित्व मान्य होते हुए भी उनकी सीमा और परिधि केंद्रित नहीं की जा सकती। अतः यह मानना ठीक नहीं कि उनका मेल नहीं हो सकता। छटवें भङ्ग द्वाराभी इसी तथ्यका समर्थन नकारात्मक शैली से मिलता है। और सातवां भङ्ग दोनों के अस्तित्व और भेद को कथंचित मानते हुए भी उनके क्षेत्र को अवक्तव्य ठहरा कर समन्वय के सुदृढ चट्टान पर उनको खड़ा कर देता है। मानव स्वभाव सर्वत्र एक है। अतः उसके भिन्न से दिखते बाह्यरूपों का मिलना भी स्वाभाविक है। पश्चिम के गोरे कई ऐसे हैं जो पूर्वके रूपोंकी भांति जीवन तत्वोंमें विश्वास रखते और अहिंसक जीवन बिताते हैं। इधर भारतमें ऐसे लोगों की कमी नहीं जो गोरे साहिबों की नकल करते हैं। अतः पूर्व और पश्चिम का मेल होना संभव है, किन्तु वह मेल सत्य और अहिंसा के आधार पर ही हो सकता है। श्रेष्ठ मानव जीवन वही है जो रक्तरंजित न हो— जिसमें मानव के हाथ निरापराध के रक्त से रंगे न हों—जो प्राकृतिक हों। पश्चिम के विचारकों ने भी यही कहा है। म० ईसा का जीवन और शिक्षा सत्य और अहिंसा से ओत प्रोत है। अतः जिस अहिंसा को पूर्वने सर्वोपरि धर्म माना उसीको पश्चिमके मसीह भक्तोंने भी सर्वश्रेष्ठ कहा। अतः सत्य और अहिंसा की सरसतामें ही पूर्व और पश्चिम एक होकर सुख और शांतिकी स्थापना कर सकते हैं—यह सत्य आज

हम जीवन व्यवहार में उतार कर लोक के समक्ष उपस्थित करना है। जो धर्मेच्छु है और जो अपना और लोकका कल्याण चाहता है, उसे अनेकांत सत्य और अहिंसा की सुखद छाया में आकर उसका विस्तार सारे संसार में करना ही अभीष्ट होना चाहिए। इसी में उसका और लोकका कल्याण है, क्योंकि सदुपदेश को पाकर मनुष्य की बात क्या, पशु भी सुलझ जाते हैं। कहा भी है —

'सुलझे पशु उपदेश सुन, सुलझे क्या न पुमान ?
नाहर तें भए वीर जिन, गज पारस भगवान !!'

दोनों ही मित्र यह भाषण सुनकर बड़े ही संतोषित हुए और खुशी खुशी अपने २ घर आ गए। रवि अपने प्रिय पदको आगे गुनगुनाने लगा —

'अंतर उज्ज्वल करना रे भाई!
जप तप तीरथ-यज्ञ व्रतादिक आगम ग्रंथ उचरना रे!
विषय कषाय कीच नहिं धोयो या ही पचि पचि मरना रे!
बाहिरभेष क्रिया उर शुचि सो कीयें पार उतरना रे!
नाही है लोक रंजना ऐसे वेदन यों वरनारे! अंतर०।

फिर वह सोचने लगा कि अंतरंग की शुद्धि ही सर्वोपरि है। अन्तर शुद्धिके बिना ज्ञानका रंग चढ़ता ही नहीं। पदके अंतिम चरण को दुहराता हुआ, वह घर में घुस गया —

'राग द्वेष मन सा मन मता, भजन किए क्या सरना रे!
'भूधर' नील वसन पर कैसे केसर रंग उछरना रे?

(५)

उपसंहार।

'य एव मुक्त्वा नय पक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसंति नित्यम।
विकल्पजाल च्यूतशांत चित्तास्तएव साक्षादमृतं पिबंति॥'

—श्री अमृतचंद्राचार्य

उस दिन के पश्चात जब रवि और शिव मिले तो उनमें एक अपूर्व उत्साह था–उनके अन्तरका प्रकाश बाहर चमक रहा था। उनको दृढ़ विश्वास हो गया था कि 'जो पुरुष नयके पक्षपात को– एकांतमत के हठ को छोडकर अपने आत्म स्वरूप में गुप्त होकर स्थिर रहते हैं वे ही पुरुष विकल्प के जाल से रहित होकर शांतचित्त होते और साक्षात अमृत को पीते हैं।"

स्याद्वाद सिद्धांत सम्यग्ज्ञान को पाने का अपूर्व साधन है–ज्ञान का पूर्ण प्रकाश और अनुभूति उसी के सहारे से होती है। वह ग्वालिन की मथना जैसी क्रिया है। जैसे ग्वालिन दही को मथकर मक्खन निकाल लेती है-मथनी की डोरी के दोनों छोर उसके हाथमें हर समय रहते हैं परंतु कभी एकको ढीला करती है और दूसरे को खींचती है–इस प्रकार अर्पित और अनर्पित क्रिया के द्वारा वह अपने उद्देश्य में सफल होती है–उस अवश्य मक्खन को पा लेती है जो दही के भीतर छिपा हुआ है। वैसे ही ठीक इस प्रकार की क्रियाका अभ्यास स्याद्वादकी सप्तभङ्ग रूपी डोरीसे करके जिज्ञासु आत्मज्ञानको पाता है और अन्तर्दृष्टा बनता है। उसके अन्तस में भेदविज्ञान का सूर्य उगता है और उसके आलोक में वह शांतिचित्त से निर्बाध अमृतत्वका रसपान करता ही है।

हमें जीवन व्यवहार में उतार कर लोक के समक्ष उपस्थित करना है। जो धर्मेच्छु है और जो अपना और लोकका कल्याण चाहता है, उसे अनेकान्त सत्य और अहिंसा की सुखद छाया में आकर उसका विस्तार सारे संसार में करना ही अभीष्ट होना चाहिए। इसी में उसका और लोकका कल्याण है क्योंकि सदुपदेश को पाकर मनुष्य की बात क्या, पशु भी सुलझ जाते हैं। कहा भी है —

'सुलभ पशु उपदेश सुन सुलझे क्या न पुमान?
नाहर ते भए वीर जिन, गज पारस भगवान!!'

दोनों ही मित्र यह भाषण सुनकर बड़े ही संतोषित हुए, और खुशी खुशी अपने २ घर को गए। रवि अपने प्रिय पदको आगे गुनगुनाने लगा —

'अन्तर उज्ज्वल करना रे भाई!
जप-तप-तीरथ यज्ञ व्रतादिक आगम ग्रंथ उचरना रे!
विषय कषाय कीच नहिं धोयो या ही पचि पचि मरना रे!
बाहिरभेष क्रिया उर शुचि सों, कीयें पार उतरना रे!
नाहीं है सब लोक रंजना ऐसे वेदन वो वरना रे! अन्तर०।

फिर वह सोचने लगा कि अंतरंग की शुद्धि ही सर्वोपरि है। अन्तर शुद्धिके बिना ज्ञानका रंग चढ़ता ही नहीं। पदके अंतिम चरण को दुहराता हुआ, वह घर में घुस गया —

'राग द्वेष मल सा मन मैला, भजन किए क्या सरना रे!
'भूधर' नील वसन पर कैसे केसर रंग उछरना रे?

तदनुरूप रवि और शिव ने अपनी बुद्धि को अनेकान्त के आलोक में विशाल और उदार बनाया एव सत्य और अहिंसा को अपने जीवनके दैनिक व्यवहारमें उतारनेका अभ्यास प्रारंभ कर दिया। सत्य और अहिंसाके प्रयोगाने उनके जीवनको निखार दिया—लोककी दृष्टि में वे ऊँचे उठ गए और लोग उनका अनुकरण करनेको लालायित हो उठे। सेवा धर्मकी भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने अहिंसा-मिशन को आगे बढ़ाने का सुदर सकल्प किया। निस्सदेह सम्यक् श्रद्धा से सच्चे ज्ञान का विकास होता ही है और ज्ञान की सार्थकता आचरणमें होती है। सम्यक्चारित्र धर्मका मूल्य है। सबसे प्रेम और सहयोग करनाही लोक मानस को जीतनका अचूक मत्र है, जिसकी साधना विचार और वितर्क के सतुलन अर्थात अनेकान्त सिद्धात की मान्यता में अन्तर्निहित है। नीर क्षीर विवेक के अवधारण में ही जीवन की सार्थकता है। कहा भी है —

'अनन्तपार किल शब्द शास्त्र स्वल्प तथायुर्बहवश्च विघ्ना।
सार ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु हसैयथा क्षीरमिवाम्बुराशेः॥'

'शास्त्रसिन्धु अपार है—जीवन थोड़ा है। विघ्नोंकी गिनती नहीं है। ऐसी स्थिति में ग्रथ समुद्र का पूर्ण अवगाहन करनेके प्रयास के स्थान पर हस के नीर क्षीर नीतिके अनुसार सार वस्तु को ही ग्रहण करना उचित है।'